भूमिका

सबम पहल मैंन योगी क चमत्कारो का वणन किया है। हा सकता है कि आधुनिकतावादी इस स्वीकार न करें। किन्तु योग एक विज्ञान है जिसम मनुष्य के उपचेतन मस्तिष्क की शक्तिया का जगाया जाता है। पूवजा न अपने मध्यकालीन वातावरण म उस पर प्रयाग किय थ। भविष्य मे इस पर वज्ञानिक ढग स मनन हागा। मैंन अपनी आखा म आग पर चलने वाल, पानी पर एस चलन वाले जस धरती पर चलत है इत्यादि कार्यों को करन वाल यागिया का दखा है। गारखनाथ क साथ एसी सिद्धिया दखना सहज है।

दूसरा बात ! मैंने यह दखा है कि गारखनाथ का मूल सन्देश और समाज पक्ष क्या था ? उनकी अपनी युग सीमाएँ थी। परिस्थितिया स अलग हा जाने पर उनक वाक्या का अथ भी परवर्ती युग म बदल गया। गोरख-नाथ जब जन्म थ, भारत म घार योनि-पूजा प्रचलित थी, तभी वे इतन स्त्री-विरोधी लगत हैं। वस्तुत वे स्त्री विरोधी नहा थ। व स्त्री के मातृत्व को फिर स स्थापित करना चाहत थ, क्योकि स्त्री को तब बौद्धा और तान्त्रिका ने साधना के लिए केवल यानिधारिणी के रूप म लिया था। वस योगी और साधक के लिए ता स्त्री का निषेध, गोरख का विशष स्वर था।

तीसरा बात ! गोरखनाथ के विषय मे मैंने अन्यत्र थीसिस लिखी थी। उसम म व्यक्ति को सामाजिक परिस्थितिया के बाह्याचार म दख पाया था अब उस आचार के साथ मनुष्य क अनेक प्रयोगा म आन्त्यानुभव की भाँति दख रहा हू।

चौथी बात ! गोरखनाथ महान् यागी थे नेता थे, इतन कि उनका

अमर उनके ५०० वष बाद तक रहा। यहाँ मैंने दिखाया है कि गोरख पथ का प्रारम्भ क्या था। अपनी अगली पुस्तक — जब बानी बात बनी म मैंने चपटनाथ को लिया है, जिसमे नाथ पथ की मध्यकालीन-कालीन परिस्थिति पर ही है। इसके बाद कोई का तारा (प्रकाशित) है जिसमे योगि पथ का अन्तिम दृश्य है।

यहाँ सक्षेप म मैं कुछ बातें और बता दू—

(१) गोरखनाथ पहले वज्रयानी थे बाद म व नाथ मत म आये। पहले व सिद्धामृत कौल सम्प्रदाय म मत्स्येन्द्र द्वारा दीक्षित हुए और अन्त तक उसी का उन्होंने निर्वाह किया। मत्स्येन्द्र जालधरनाथ के गुरुभाई थ। जालधर क शिष्य कण्हपा थ। जालधर और कण्हपा कापालिक हुए। कापालिक पहले नर बलि बाल नहीं थ। नर-बलि कालामुख देते थे। बाद म कापालिक मत पर ही यह नर बलि आ पडी। परन्तु जालधर और कण्हपा कौल बौद्ध तान्त्रिक वज्रयानी प्रभाव म थे। मत्स्येन्द्र पर भी बौद्ध प्रभाव था। बाद म मत्स्येन्द्र योगिनी कौल सम्प्रदाय की वाममार्गी साधना म चल गये जिसम से गोरख उन्हे उबार कर पुनः रास्ते पर लाये। गोरख को बौद्धलोग घृणा की दृष्टि से देखते है। गोरख के साथ वज्रयान का सम्बन्ध रहा हुआ था तभी मैंने वज्रालो क्रिया का उनके साथ उल्लेख किया है। 'अमरगोरामनम म भी इसका उल्लेख है।

(२) गोरखनाथ म पहले यहाँ वज्रयान पाशुपत सौर गाणपत्य दत्तात्रेय मत तथा कौल आदि अनेक मत थे जिन पर मत क्या म क्या प्रकाश डाला है। यह प्राय ब्राह्मण विरोधी सम्प्रदाय थे और इनका पुराना परम्परा थी अनाय पद्धतियो का विकास।

(३) उस समय भारत म एक स्त्री-देश था जहाँ मातृसत्तात्मक समाज का प्रभाव अधिक था। गोरखनाथ को कण्हपा ने गोदावरी के तीर म बनाया था कि गुरु मत्स्येन्द्र स्त्री देश म फँस गये थ। योगी बहुत यात्रा करते थ।

(४) गोरखनाथ ने भरथरी नामक एक राजा को शिष्य बनाया था। रानी पिंगला से सम्बन्धित भर्तृहरि शतक के प्रणेता भरथरी गोरखनाथ से काफी पहले हो गये थ। एक चौरंगीनाथ, पूर्व का निवासी गोरख का शिष्य था। दूसरा एक चौरंगीपा था जो पूरन भक्त कहलाता है। यह

गोरखनाथ स पहून हो गया था। बाद म दानो चारगिया का भेद मिट गया और उन्हें एक कर दिया गया। जालंधरनाथ क साथ जिनकी कथाएँ जुड़ी हुई है व गोपीचन्द और मयनावती वगारह क थ ग्रार गोरख तथा जालधर के ममकालीन नहा उनके कई वष बाद हुए थ, परन्तु वे भी किंवदंतिया म समकालीन बन गय हैं। गोपीचन्द का मिध के पीर पठाग्रा स भी बाद में ही मिला दिया गया है जब कि पीर पठाग्रा मम्भवत गोरखनाथ का ममकालीन था जिसका गारख स सघप भी हुआ था। मैंने उपन्यास म योगी विरोध का कारण स्पष्ट किया है।

(५) तिब्बत म मत्स्येन्द्रपूज्य हैं गोरख नहा, बाद्ध चिन्तन स गोरख का विरोध होने के कारण। मैंने तत्कालीन राजनीति धम, दशन समाज—सब का ही रेखाचित्र दने का प्रयास किया ह।

मरे गारखनाथ को वतमान या आधुनिक विचारधारा का पात्र नहीं समझना चाहिए। व बड़े जागरूक थ। उन्होंने ६ सम्प्रदाय अपने चलाये ६ शिव के। और शिव के अठारह म स बारह नष्ट किय। यह स्पष्ट करता ह कि उन्होंने योगि माग को प्रशस्त बनाया। शैव और यागि माग वाले सम्प्रदाया का एक किया बद के व विरोधी थ, परन्तु जैस प्लेटो का स्वप्न था दाशनिक शासका का, वसे ही सभवत गोरख न भी उपदेशक योगि-सम्प्रदाय चलाया था, जिसम बडी व्यापक भूमि का लिया गया था। वाम-माग का गोरख न भारत स खोद डाला। शकर ने पहले सांस्कृतिक एकता के लिए अपने चार पीठ स्थापित किय थे उसी प्रकार गोरख के प्रभाव से असकर मत मिलकर एक हुए जो इस्लाम के क्षेत्र म नहीं गय। बाद म यह सब अपने को हिंदू कहन लग। गोरख न समस्त अन्याय उपासना और याग-माग को परिष्कृत प्रत्यभिज्ञा दशन और पातजल याग क निकट ला खड़ा किया यद्यपि वे वद विरोधी थ। तुलसीदास जस जागरूक न तभी कहा था— गोरख जगायो जाग भगति भगायो लोग। गोरख न इतिहास म एक बहुत बड़ा काम किया था जिसका परिचय स्पष्ट नहीं है। उनका युग भुला दिया गया, यह इतिहास का दुर्भाग्य है। तुलसीदास न वदिक धम की प्रतिष्ठापना करत समय गोरख क माग का प्रभाव दखा होगा। गोरख का याग-माग एक भूमि थी जिस पर असख्य निम्न जातियो ने त्राण पाया था।

मुसलमानों में भी विदेशीपन या जाति घृणा के बावजूद कुरान को कट्टरता से त्यक्त की प्रवत्ति घटी थी। तभी तो सूफियों ने अत्याचारी मुसलमान शासकों को शैतान और माया कहा था। वाम मार्ग के इस विशुद्ध मार्ग पर आसानी से वष्णव मत पीछे रखकर फैला और फिर भक्ति के सार्वजनीन मानवीय स्वर में लोक पर छा गया।

यहाँ वाम मार्ग के बारे में बता देना आवश्यक है।

इस देश की जो सीमाएँ अब हैं वे पहले नहीं थी। पहले इन संस्कृतियों के प्रसार थे—आर्य द्रविड़ आग्नेय किरात (जो मंगोल हुए) इत्यादि। आर्य ईरान तक फैले थे। द्रविड़ दक्षिण तक। आग्नेय (आग्नेय) जातियों में ही सभवत नाग इत्यादि थे जिनसे जनमेजय इत्यादि ने युद्ध हुआ था। किरात परिवार में राक्षस यक्ष गन्धर्व किन्नर अप्सरागण आदि थे

आर्यों से पहले इस देश में किरात द्रविड़ और आग्नेय संस्कृतियाँ थी। आर्य यज्ञ करते थे और पूर्वजों की पूजा करते थे। द्रविड़ मन्दिर बनाकर देवताओं की पूजा करते थे। किरातों में चैत्य पूजा थी और वे उपासना के लिए विहार बनाते थे। किरातों का सम्बन्ध वाम मार्ग से है। यक्ष और राक्षसों की पहले एक ही देवी उपासना थी। उनका मातृसत्तात्मक समाज था। यक्षों में सिद्धियाँ करते थे भूत सेते थे मदिरा मांस का प्रचलन था। बाद में जब पुरुष को पता चला कि समाज के वैज्ञानिक विकास में स्त्री तो तब जन्म देती है सन्तान को जब पुरुष वीर्य स्थापित करता है तब उन्होंने स्त्री की जननेन्द्रिय भग की पूजा छोड़ी। सबने नहीं। जिन्होंने छोड़ी वे राक्षस (रक्षा करने वाले) बने और उन्होंने लिंग-पूजा प्रारम्भ की। तब तक पितृसत्तात्मक समाज आ गया था। यक्षों में काम पूजा होने लगी। उसी को राक्षस शिव रूप में पूजने लगे। इनमें परस्पर द्वन्द्व हुआ वही शिव काम युद्ध है। बाद में सधि हो गयी। इन्हीं यक्षों और राक्षसों में तन्त्र इत्यादि का मूल है। उस आदिम समाज में जो विचित्र उपासना पद्धतियाँ थी वे ही टू फटे इत्यादि के रूप में बाकी हैं। वण बीज इत्यादि उसी काल के अन्ध विश्वासों के अवशेष हैं। अब यह माना गया कि सृष्टि लिंग योनि के मिलन से होती है। यक्षों में स्त्री पर बंधन कम थे स्वच्छन्द सभोग था यहीं अप्स

रामा में दिखता है। परन्तु यक्षा म वक्ष-पूजा भी बहुत थी। वह राट्य-युग का अवशेष था। आर्यों ने पहले उसी पक्ष को अपनाया। वेद में ही मिलता है कि समार एक वृक्ष है उसमें यक्ष रहता है। यक्षा के दार्शनिक पक्ष का आर्यो म न लिया गया। दार्शनिक पक्ष में योग मार्ग—सयम निरोध के मार्ग का भी आर्यो म द्रविड और विरात्ता स ले लिया गया। महाभारत-काल स पहले ही अथववद म अनार्यों के बहुत स विश्वास आर्यो म आ गये परतु सभी प्रतमुक्त नहीं हुए। जब तक आर्यों का समाज विकास करता रहा तब तक स्त्री सम्बन्धी रहस्यात्मक उपासना-पद्धति को उसन यक्षा स नहीं लिया। महाभारत-युद्ध के बाद फिर आय अनार्यों म बहुत तालुर बढ़े। ब्राह्मणा न सार अनाय दवी दवता, तीथ आदि स्वीकार कर लिय, परन्तु वाम माग नहीं लिया। उस समय वष्णव मत का उदय हुआ। वह मानवतावादी चितन था जिसन शीघ्र ब्राह्मणा म जगह बना ली। शव चितन भी दार्शनिक पक्ष मे आ मिला। बुद्ध के समय म जो क्षत्रिया न सिर उठाया तो उसम कठोर सयम अपनाया गया। परन्तु शाक्य नेपाल म थ। शीघ्र ही उन पर चीन तिब्बत आदि स यक्ष सस्कृति की स्त्री-पूजा आने लगी। ब्राह्मणा म विष्णु, महादेव और ब्रह्मा के कारण इन्द्र का दर्जा गिर गया था। क्षत्रिय इन्द्र यानी शत्र को पकडे रहे। शत्र यक्ष देवता म मिल गया और वाम माग बना। पहले वह बौद्धा म घुसा। सयम की अति से ऊब कर नया दशन निकाला गया जो वामा = स्त्री माग म गिरा। शैवा म दो वग थ। एक जो वद मानत थ, दूसर जो नहीं मानत थ। अनाय उपासनाओं म योग मार्गी भी थ। जो योग माग वद को नहीं मानत थ व भी भारत म थ। इस प्रकार भूत, प्रेत, जादू टोना अन्धविश्वास, पुरानी परम्पराओं के प्रचलन म धीरे धीरे बौद्ध, अवदिक शव और अवदिक योगि-माग वाम माग म डूब। हषवद्धन के बाद भारत पर विदेशियों का आक्रमण होना बद हो गया। ब्राह्मण और क्षत्रिय जो पहले विदेशियों म लडत थ, उनका प्रगतिशील काय समाप्त हो गया और व जनता पर बोझ बन गय। दक्षिण भारत म उस समय (८वी नवी शती) वष्णव और शव भक्ति-माग बढ़। उत्तर में उनका प्रभाव लगभग १३वी शती म पहुंचा। प्रजा न वण-यम के विरुद्ध विद्रोह किया। नाथ, योगि मार्गी, तांत्रिक, बौद्ध इत्यादि जो

वेद विरोधी थे खड़े हो गए। इनके पास वामा साधना रात में थी। इसका उन दिनों के गतिरुद्ध समाज में ऐसा प्रभाव पड़ा कि जन वैष्णव आदि भी इस वाम मार्ग से अछूत नहीं रहे। इन सारे मार्गों के पीछे दर्शन की भूमि थी। कापालिक कालामुख दर्शन वास्तव में राक्षस जाति की उपासना पद्धति का अवशेष था। कालामुख तो राक्षसों का एक गण ही था।

उन दिनों ही गोरखनाथ हुए। उन्होंने योग मार्ग को वाम मार्ग से मुक्त किया। यद्यपि उनके बाद उसने नाथ मार्ग में भी प्रसार कर लिया पर वह फिर जिया नहीं। यह जो योग-पद्धति थी—हठयोग—गोरखनाथ ने पुरानी अनार्य कायायोग की प्रणालियों में से शुद्ध की थी और इसे आर्यों से स्वीकृत विशुद्ध योग मार्ग—पातंजल योगदर्शन से मिलाया था। अनार्य शैव दर्शनों को उन्होंने आर्यों में स्वीकृत शैव प्रत्यभिज्ञा-दर्शन में मिलाया था। वे स्वयं ब्राह्मण विरोधी थे उसके वर्ण धर्म के कारण। परन्तु उपासना और योग में अब ब्राह्मण चिन्तन से दूर नहीं रहे क्योंकि उन्होंने आदिम पद्धतियों की विकृत साधनाओं को योगपरक, अध्यात्मपरक अर्थ दे दिया था। यो वाम मार्ग का पतन हुआ। परन्तु गोरख का काय नीरस ज्ञान और कठोर संयम पर टिका था। गोरख ने जो कार्य किया वह एक यौनवाद—मैथुनगत समाज के प्रति विद्रोह था। उस समय योनि-पूजा सर्वोपरि हो गयी थी क्योंकि समाज में गतिरोध था नयापन था नहीं लोग चमत्कारों में पड़े थे। गोरख ने इस योग मार्ग की स्थापना की और दूसरी (अनि) पर जाकर योनि-पूजा का विरोध किया। इसमें उन्होंने स्त्री का स्थान ही हटा दिया। स्पष्ट ही यह दूसरा अतिवाद था। वैष्णव मानववादी स्वर जब दक्षिण से उत्तर में आया उसने शिवशक्ति के द्वन्द्व को राधा कृष्ण के प्रेम का आधार दिया। प्रारंभिक शाक्त विद्यापति चण्डीदास आदि कवियों ने पहले प्रेम को वासनापरक ही देखा क्योंकि उनकी परम्परा में शाक्त प्रभाव था। वल्लभाचार्य की परम्परा में यह प्रेम सूक्ष्म होता चला गया। शंकर ने दार्शनिक पक्ष में वेद विरोधियों को हराया और देश की जातियों को वेद के सहारे खड़ा किया। गोरख ने वेद विरोध किया पर दर्शन और साधना में वे ब्राह्मणों के चिन्तन के पास खड़े हुए। इस्लाम की मार ने योगी और हिंदू का भेद न जाना। इसलिए आत्मरक्षा में योगी

भी हिंदू बन गये। योग मार्ग के प्रभाव में अनेक जातियाँ थी। जो मुसलमान हो गयी उनमें भी योग मार्ग का प्रभाव बना रहा।

वाम मार्ग का सक्षिप्त इतिहास यही है। अनार्य जातियों में जो काला जादू यानी तंत्र था, वह योग आदि से मिलकर काया योग बना। उसको शुद्ध दार्शनिक स्तर पर आर्यों ने पहले ही स्वीकार कर लिया था। रहा-सहा गोरख के जरिये शुद्ध होकर आ गया। जिस प्रकार वैदिक युग समाप्त हो जाने पर उपनिषद काल में समस्त कर्मकाण्ड की आध्यात्मिक व्याख्या की गयी उसी प्रकार इन वाम-मार्गी आदिम उपासना पद्धतियों की भी गोरखनाथ ने आध्यात्मिक व्याख्या करके उसे दार्शनिक पक्ष में विशुद्ध कर डाला।

अब प्रश्न यह है कि गोरख की मनुष्य समाज को देन क्या है? उन्होंने यानि पूजा की अति को रोककर सयम का मार्ग बताया। यह देन नही है। यह सामाजिक न्याय है। एक अति का खडन दूसरी अति में हुआ, परन्तु यह नयी अति भी लोक का आगे चलकर कल्याण नही कर सकी। यह सहज जीवन के विरुद्ध पथ था।

मेरा मत है कि गोरखनाथ ने मनुष्य-समाज को बहुत बडी देन दी है।

एक—गोरखनाथ के विश्वास मध्यकालीन थे और सारा वातावरण उसी काल का था। परन्तु गोरखनाथ ने योग को लोक के पास लाना चाहा, तभी एकान्त साधना न करके वे सम्प्रदायों को शुद्ध करते रहे सगठन करते रहे। यह और बात है कि वे प्रतिवादी थे। अतिवाद तो अतिवाद की प्रतिक्रिया थी। परन्तु गोरख ने यह प्रमाणित किया कि योग मार्ग का प्रयोग समाज के लिए होना चाहिए। प्रश्न यह उठता है कि क्या उनका योग व्यक्तिपरक नही है? है, अवश्य है। परन्तु वे मध्यकालीन व्यक्ति थे। उन्हें जो परम्परा मिली थी उसे वे कैसे छोड सकते थे? वे योग को पूर्ण रूप से लोक के लिए स्थापित नही कर सके परन्तु उन्होंने एक इंगित किया। मनुष्य के इतिहास में एक प्रयोग करके नयी तरफ इशारा किया। वे उसे पूरा न कर सकें तो उनका दोष नही उनके युग की सीमाएं भी तो हमें देखनी चाहिए। उस युग में लोग यही मानते थे कि धरती के चार

तरफ सूय घूमता है। योग का अथ वैज्ञानिक सत्या का अन्वेषण नही है। योग है मनुष्य का सयम और उसी स उस अनेक विचित्र शक्तियाँ मिलती हैं। योगी जिन चक्र पदम इत्यादि को मानत है वह सब शरीर की चीरा फाडा करन पर नहीं मिले है। अपन पुराने हिसाबा म हा मध्यकालीन योगिया न सिद्धिया तो हासिल की ही है। और यह मनुष्य के लिए एक सन्देश है कि उसम अभी अपार शक्तियाँ है जा जगाने पर जाग सकती हैं। गोरख न वैज्ञानिका को अपना मध्यकालीन प्रयत्न विरासत म द दिया है।

दूसरी देन यह है कि योग पातजल योगशास्त्र म चित्त वृत्ति का निराध है और है सामरस्य। उसका परमात्म म सम्बन्ध नही। बौद्धा म आत्मा का भी नही मानत थ। जन भी परमात्म का नही मानत थ। गाया चाह जो उपासना पद्धति हो दशन हा याग सिद्धि सब ही पा सकत थ। तो योग की असलियत चित्त वृत्ति का निराध ही हुई। फिर ब्रह्मचय म भोग—दोना अवस्था म मनुष्य ने सिद्धि पायी है यह भी हम दखत है। परन्तु चित्त का निरोध सबने माना है। गोरख का मत था कि पवन, वीय या चित्त इनम स किसी एक को काबू म करन म सिद्धि मिल सकता है। तो सिद्धि मिल सकता है यह इतिहास बताता है। मनुष्य म बडी शक्तिया है यदि वह उनका जगा ले। गारख न सिद्धि की इन शक्तिया को ही बडा नहीं माना, मगर मस्तिष्क के विकास का सर्वोपरि माना। व उस रव सम या ब्रह्म मिलन मानत थ। वैज्ञानिक दृष्टि स दखा जायगा ता शायद कुछ और भी मिले। इतनी बडी दूसरी देन है गारख की कि उन्हान मनुष्य के भावी विकास की ओर एक बडा इशारा किया।

तीसरी देन की ओर भी गोरख न ही इशारा किया है। शासन करन वाले पूजा करान वाल समाज के याग्य नेता नहीं है। समाज का नेता वास्तव म वह होना चाहिए जो योगी हो अथात स्वाथ स परे हो। अन्यथा सत्ताधारण वग की लिप्सा स जा व्यक्ति परे हा वही शासन करने के योग्य हैं। पर तु उनकी मध्यकालीन सीमा यह है कि अनत उनका योग माग इतना समाज पक्ष रखकर भी वयक्तिक ही है। योग वयक्तिक नहीं रहेगा सामाजिक हो जायगा सब यागी होंग यह मैं नहा मानता। फिर

भी वैयक्तिकता किसी सीमा तक शायद और सामाजिक हो सके। तीन प्रकार के मनुष्य के दुख है। भौतिक हैं—गरीबी, अमीरी इत्यादि। दूसरे हैं—रोग इत्यादि। तीसरे हैं—तृष्णा, ईर्ष्या, विजय लालसा पारलौकिकी। यह सब अहंकार के प्रभाव हैं। उदाहरणार्थ रूस में पहला दुख काफी कम हुआ है। दूसरे दुख से भयानक निरंतर लड़ रहे हैं। किन्तु तीसरा दुख वहाँ बरकरार है और वह भविष्य में मानव के विकास को भयाक्रान्त कर रहा है। योगी गोरख का प्रयास इंगित करता है कि तीसरे दुख का अन्त योग है। प्लेटो ने भी ऐसी ही कल्पना की थी, किन्तु वह दार्शनिक मात्र की कल्पना करता था। योग उसकी समझ से बाहर की बात थी।

तो यह तीन रूप हैं गोरख की—मौलिक, मानव इतिहास में। गोरख का मार्ग नहीं चला, यह इसीलिए कि वह एक प्रतिवाद के रूप में समाज में आया। दूसरे उसकी सीमाएँ वैयक्तिक थी। और उसका सामाजिक अर्थ में निर्वाह नहीं हो सका। तीसरे गोरख की परंपरा प्राचीन थी। उसमें बहुत से अवैज्ञानिक विश्वास भी थे। फिर भी एक बात सत्य है। जिस तरह पुराने हिन्दू बावजूद इसके कि वे सूरज को धरती के चारों तरफ घूमता मानते थे, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का समय गणित में बिलकुल ठीक निकाल लेते थे। इसी तरह अपनी वैयक्तिकता मध्यकालीन सीमा और आदिम विश्वासों के बावजूद इन योगियों ने प्रकृति पर मानव विजय का एक और रूप दिखाया था और यह पक्ष हमें भविष्य में अवश्य बढ़ता हुआ लगता है क्योंकि मनुष्य अपना विकास अधिकाधिक करेगा। जिस प्रकार आयुर्वेद में दवाइयाँ है जिस प्रकार रसेश्वरवादियों में दवाइयाँ थी पर एलापैथी की तरह उनके मुख्य वैज्ञानिक प्रणाली पर नहीं प्रचलित थे पर हो जाने पर दवाइयों की शक्ति बढ़ी, उसी प्रकार योग की भी संभावना है। एक और बात। यूरोप में भी योग का रूप मेस्मेरिज़्म है। वहाँ तो इसे एक विज्ञान माना जाने लगा है। पुराने लोग जैसे योग क्रियाएँ छिपाते थे, वैसे ही दवाइयाँ भी नहीं बताते थे। मेस्मेरिज़्म में शिवशक्ति आदि विचारों का स्थान नहीं है। तभी मेरा विचार है कि योग विशुद्ध रूप में मस्तिष्क का विकास है और वह मनुष्य की बहुत बड़ी शक्ति को सामने लाने की क्षमता रखता है। उसका दार्शनिक और वैज्ञानिक पक्ष कोई

भविष्य म ही प्रगट करेगा, क्योकि मनुष्य क विकास का इतिहास मुझे यह आश्वसान द रहा है।

मनुष्य की इस महान शक्ति के साथ प्रारभिक प्रयोग सिद्ध करन वाल योगी गोरखनाथ की देन का मैं इसीलिए बडी मानता हूँ और मैंन इसके पक्ष प्रतिपक्ष म जो विचार हैं आपके सामन प्रगट किय ही है। सार भारतीय चिन्तन क विकास म जब इस योग न अटक लगायी है सब सामाजिक चिन्तन योग म अत करते हैं अपना। पुराणवाले, शव, वष्णव, बौद्ध तान्त्रिक जन—सबके अनुसार चरमोन्नति कहाँ है ? योग म ! योग है व्यक्तिपरक। अत अन्तत सब धम चिन्तन दार्शनिक चिन्तन योगपरक होन स व्यक्तिपरक है। भारत क भविष्य म सभवत ससार की पथ दिखान वाली ज्योति उदय होगी जो रूस चीन के अनुभवा की अच्छाइयाँ लेगी अपनी परम्परा क मानवतावाद को लगी और लेगी योग म निहित मानव जाति की अपार शक्ति को और नय समाज ससार और व्यक्ति का उदय होगा जिसम समाज क विकास के साथ व्यक्ति घुटेगा नहीं, विकास करेगा।

धूनी का धुआँ

[ईसा की नवीं सदी के अंतिम वर्ष और फिर दसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के कुछ वर्ष—यही इस उपन्यास का युग है। इस समय राजनीतिक रूप में भारत में कोई विशाल साम्राज्य नहीं था, छोटे छोटे राज्य थे। इस समय पश्चिम में अरबों द्वारा फैलाया गया इस्लाम संप्रदाय ईरान पर पूरी तरह से छा गया था और भारत की सीमा पर झुक रहा था। इस समय से लगभग १२८ या १५० वर्ष पूर्व मुहम्मद बिन कासिम नामक अरब ने बगदाद के इस्लामी खलीफा की आज्ञा से सिंध के राजा दाहर पर आक्रमण किया था। बौद्ध और बौद्ध प्रभाव में पड़े जाटों ने ब्राह्मणों के शासन से चिढ़कर उसे मदद दी थी और सिंध का हिंदू-शासन नष्ट हुआ था। परन्तु शीघ्र ही मुसलमान शासकों की धर्म प्रसार करने की तृष्णा देखकर हिंदू जातियों में नया जागरण हुआ था और इस समय वहाँ से फिर अरब भगा दिये गये थे।

इस समय से लगभग १००-१२५ वर्ष पूर्व ब्राह्मण धर्म ने शंकराचार्य के रूप में उत्थान करके चातुर्धाम के रूप में अखाड़ा में लड़ाके ब्रह्मचारी स्थापित करके ब्राह्मणधर्मी संगठन स्थापित किया था, जिसके दार्शनिक पक्ष में बौद्धों के दर्शन का निचोड़ ले लिया गया था।

यह वह समय था जब यूरोप में ईसाई धर्म का पूर्ण प्रभाव था। क्रूसेड शुरू नहीं हुई थी। पोप का अखण्ड शासन सारे यूरोप पर चलता था। विद्वत्ता केवल ईसाई सम्प्रदाय की पुस्तकें पढ़ने तक में सीमित थी। लोग यह समझते थे कि १००० ई० में संसार समाप्त हो जायेगा। अतः उनकी राय में चिंतन व्यर्थ था। १००० ई० में यह धारणा जब खण्डित हो गयी तभी यूरोप

मे नयी लहर दौडी, फिर यूनान और इटली के पुराने ग्रन्थो का पढना प्रारभ हुआ और यूरोप म पुनर्जागरण अर्थात रिनर्सा हुआ ।

इस समय चूकि अरबो ने इस्लाम को तलवार के बल पर फैलाया था प्राचीन ईरान देश म इस्लाम फैल गया था। शीघ्र ही कम सभ्य अरबो की प्राचीन सस्कृति ईरानी सस्कृति न दबा लिया था। ईरान के मुल्ला वग म पुराना गव तो था ही नयी कट्टरता छा गयी और उत्तर-पश्चिम म आन वाली तुर्को की बबर जाति का उसन स्वीकार कर लिया। तुक काफी बबर थे। उनके पीछे कोई सास्कृतिक परम्परा भी नही थी। ईरानी सस्कृति ही उनकी सस्कृति बनी। इस झगड म ईरान और ईराक म जो शव पाशुपत और बौद्ध तथा वेदान्त धमावलम्बी थे जो योग मार्गी थे उनम इस्लाम के आन पर भीतरी साधनाएँ चल पडी थी, जिनका प्रभाव आग सूफी मत के रूप म स्पष्ट मिलता है। अनक मुसलमान फकीर भारत म बगाल और असम तक आते जाते थे।

इस समय तक भारतीय व्यापारियो का माग यूरोप की ओर उत्तर म ईरानी और अरब पूरी तरह स छीन चुके थे। समुद्र व्यापार इनके हाथ म अरबो न छीन ही लिया था। थोडा सा व्यापार निजत आन्ति स चलता था। इसलिए आर्थिक आवश्यकताओ के अभाव म राजनतिक चेतना होने पर भी बडे राज्य नही थ क्योकि जहा का उत्पादन वहा ही खतम होता था। हा दस्तकारी बन गयी थी पर जीवन म कोई नवीनता न थी। राजनतिक चेतना का प्रमाण है त्रिलोचनपाल का अनक राजाओ का एकत्र करके महमूद गजनवी के बाप स लडना पृथ्वीराज का अनेक राजाओ को एकत्र करके गोरी स लडना जिस युद्ध म हिन्दू स्त्रिया न गहने बेचकर सिपाहियो के लिए चन्दा इकट्ठा किया था। राजा दाहर ने भी मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण क समय राजाओ को बुलाया था जो समय पर न आ सके। इसी चेतना के कारण महमूद गजनवी से बिना लड ही उसकी आधीनता स्वीकार कर लेन पर एक राजा को गड न मार भी डाला था। परन्तु गुप्त और पुष्पभूति साम्राज्यो के निर्माण के पीछे जो आर्थिक कारण था वह न रहन म विशाल साम्राज्य यहाँ नही बन सका जो तभी बना जब मुगलो के समय म व्यापार ईरानियो के हाथ म चला गया और दूर दूर

तब फिर फैल गया।

इस समय तिब्बत में बौद्धधर्म की तान्त्रिक प्रणालियाँ खूब प्रचलित थीं। हूण आदि विदेशी जातियाँ भारत के विशाल समाज में मिल चुकी थीं। जातियों की उथल-पुथल हो रही थी।

ईसा की नवीं सदी के अन्तिम वर्ष और फिर दसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के कुछ वर्ष—]

१

वह एक पच्चीस वर्ष का युवक था। मुख पर हल्के मुलायम रोम थे, गोरे रंग पर श्याम छाया अत्यन्त आकर्षक लगती थी क्योंकि वह तप्त कंचन-सी स्निग्ध दिखाई देती थी। उसका मस्तक चौड़ा था, लम्बी जटाएँ उस पर छायी थीं। नाक न छोटी, न लम्बी। केवल ओठों का ऊपरी भाग और नयन देखने में कभी कभी लगता था, कोई मनस्विनी है।

ध्यान में बैठा था वह और ऊँघने लगा था। बाहर दालान में लाल कपड़े की धोती के स्थान पर बाँधे एक अधेड़ किंतु हृष्ट पुष्ट व्यक्ति बैठा था। सामने काली मिट्टी बिछा रखी थी, जिस पर अहिवलचक्र अंकित था।

भीतर से आवाज आयी: 'आज सर्वतोभद्र मण्डल की ही भूतशुद्धि करोगे न?'

स्त्री-स्वर था।

'नहीं।' अधेड़ ने कहा और पुकारा: 'अनंगवज्र!'

भीतर से युवक आया।

'बैठ।'

युवक बैठ गया।

'गुरु-परम्परा जानता है?'

'नहीं।'

'पहले गुरुक्रम कहता हूँ। आनन्दनाथ देव प्रथम हुए, फिर पर प्रकाश। तब पर...।'

'यह तो जानता हूँ आचाय।

अधेड़ प्रसन्न हुआ। फिर कहा 'तो तुझे महानीलक्रम म दीक्षित कर ?

अनगवज्र स्तब्ध रहा। गुरु ने कहा अभी और विचार कर ले।

स्त्री बाहर आ गयी थी। डोमनी थी। गोरी! इस समय शृगार किये थी और उन्नत स्तनो पर उसका हार झल रहा था।

अधेड़ व्यक्ति न कहा तयार हो, भरवी ?

हा महादेव!

तो आओ। दश मास मत्स्य तयार हैं।

अनगवज्र की ओर देखती युवती आ गयी और कटि का वस्त्र उसने खोल दिया।

अनगवज्र उठ खडा हुआ।

भरवी हँसी।

वह झटका खाया सा पीछे हट गया।

अधेड़ व्यक्ति न कहा मूख! क्या घबराता है ? सौर लकुलीश गाणपत्य कापालिक और सिद्ध मत के सब अनुयायी योनि-पूजा ही म रत हैं। देख, यही महाशक्ति है। श्मशान के धतूरे म ही मैंने इस परा धूमावती की उपासना की है। तब तक हसकर डोमनी न मदिरा उँडेल कर अपना प्याला भर लिया और गटगट करके पी गयी।

अनगवज्र न कहा स्त्री! यह पापिनी है माया है। मैं नाथ हूँ। मैं इस नहा छुऊँगा।

क्या ? नाथ स्त्री को शक्ति नही मानत ?

किन्तु इसम बिन्दु खिसक जाता है।

बिन्दु! वीय! मूख! यह योनि नहीं है यज्ञकुण्ड है। साधक इसमे लिंग के स्रुवा स वीय का आज्य डालता है ।

अनगवज्र हठात स्त्री की ओर देख उठा। उसका रोम रोम आकुल हो उठा। फिर उसन नयनो को ढँककर कहा, नहा जानता हूँ। ब्राह्मण हूँ। मैं वद का प्रभुत्व नही मानता किन्तु ।

किन्तु क्या ? पागल न बन! कामरूप स उद्यान, दक्षिण के श्री पवत

तक दबी पीठ हैं। नालंद और सामनाथ के आचार्यों के साथ मैंने विद्या प्राप्त की है। तू दत्तात्रेय सम्प्रदाय वाला स तो नहीं मिला ?'

'नहीं। अनगवज्र ने कहा, 'मुझे नाकर मतानुयामी एक ब्रह्मचारी मिला था।'

ब्रह्मचारी' सुनकर डामनी हँसी और उसने एक मास का टुकड़ा उठा कर खाया। फिर वासना से विह्वल-सी अनगवज्र को देखकर बोली, 'आ! मेरे पास! मैं कापालिक की शक्ति बनकर रह चुकी हूँ। क्या पायगा ब्राह्मणी पाकर ? उसका तो कोई फल नहीं फल है डोमनी म। तूने कौल-मार्गियों की बात नहीं सुनी ? बाएँ रमणकुशल रामा हो दाएँ हाथ म मदिरा का प्याला सामने समानदार बना सूअर का गरम गरम मास कन्धे पर वीणा हो, सद्गुरु का प्रपञ्च है कौल धर्म परम गहन है योगियों को भी अगम्य। शक्ति है। शक्ति तेरी जागी नहीं। उसे भूखा मत मार। उन वैखानसों क मन्दिरों म क्या पायगा ब्राह्मण ? आ। आज मैं तुझ परम सुख दूँगी।'

अनगवज्र दीवार पर टिक गया। उसने कहा 'तू माँ है न ?'

माँ हूँ, रमणी भी।'

'माँ ही है।

'मा। अधेड चिल्लाया—'नपुसक! तुझम महादेव अभी तक शव है। आ, यह शक्ति तुझ पर बैठ कर एक बार रमण करेगी तभी तू इसे प्राप्त करके शिव बनेगा।

नहीं।' अनगवज्र अब अधेड की जलाई अग्नि की ओर देखकर कहने लगा— शिव अग्निनाथ हैं। उन्होंने काम का भस्म किया था।'

काम को ही तो भस्म करने का यह भी मार्ग है। मूर्ख स क्या तड़पता हो ? जो सहज है, वही करो। प्राप्ति में सहज है। सहज म तृप्ति। तृप्ति मे अविचल ध्यान। ध्यान म समाधि और युगनद्ध मे जीवन का परम फल। कहा नहीं है यही! आ, निरंजन बन। शैव, बौद्ध, शाक्त सब यही मानते हैं। क्या तू नहीं मानता कि जो है वह शिव और शक्ति है क्या यह सृष्टि केवल इन्हीं के मिलन स ?

अनगवज्र के नेत्रों मे आग जलने लगी। उसने कहा, 'मानता हूँ।

यह सत्य है। शिव शक्ति! किन्तु शक्ति अपने इस रूप में वीर्य का क्षय करना है न? आनन्द की चरम प्राप्ति है यही, परन्तु उसका अन्त तो नश्वर है। मैं शाश्वत सुख चाहता हूँ।

तो चला जा यहाँ से। डोमनी ने कहा—यहाँ भी तू कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकेगा।

अनंगवज्र देखता रहा। अघड ने कहा—विघ्न न डाल। चला जा।

अनंगवज्र चल पड़ा। किन्तु उसकी आँखों के आगे अभी तक डोमनी का सुन्दर शरीर—नग्न रूप—नाच-नाच जाता था। दूर आग दिखाई दे रही थी।

आग! यहाँ कैसी आग!

वह आगे बढ़ा।

अच्छा। श्मशान था। घना वृक्ष था पास। अनंगवज्र उसके नीचे लेट रहा। और उसे याद आने लगा। यह उसने क्या किया? जीवन में सुख था समृद्धि थी। ब्राह्मण-कुल था। संस्कृत पढ़ी पाण्डित्य प्राप्त किया। और एक दिन देखा एक योगी को। कानों में कुण्डल धारण किये था वह! भूली हुई बात याद आयी। जब वह बारह ही वर्ष का था तब देखा था एक ऐसा ही रमता जोगी। पितृव्य की इच्छा थी कि भतीजा जाकर नालंद विहार में स्नातक हो और किसी राजा के यहाँ मर्यादा पाये। किन्तु हुआ क्या? भतीजा तभी से उस रमते साधू के जीवन की कल्पना करने लगा। जब समय मिलता ऐसे घूमते साधुओं से बातें करता। पठान नगर में अनेक बौद्ध और पाशुपतों का आना जाना लगा रहता जो ईरान ईराक से भी आगे बड़े ज्वालामुखी (कोहकाफ़ में तेल का एक स्रोत जिसमें से अग्नि निकलती थी—अब रूसियों ने उसमें से तेल निकाला है) तक चले जाते थे। कितने घूमे हुए थे वे लोग! कामरूप कामाख्या हिमालय उड़ीसा बंगाल दक्षिण में श्रीपर्वत और पश्चिम में हिंगलाज तक में विभिन्न प्रकार के साधू घूमते रहते। कितनी कथाएं न कहते? बालक था तब अनंगवज्र। तब उसका नाम भी तो अनंगवज्र नहीं था। लेकिन जो व्यक्ति मर चुका है अब उसका नाम याद करने से भी क्या लाभ? तब वह पठान अनंगवज्र ब्राह्मण पद निखकर घर के लोगों को सोता छोड़कर

चला आया। क्या ? कुछ करने की तृष्णा थी। वह साधू होना चाहता था। सच्चा साधू। योगी। काम, क्रोध मोह से परे। क्या है यह जीवन ! ब्राह्मण केवल दंभ और पोथियों का भार ढोना है। और तब वह युवक घूमने लगा है। कहाँ कहाँ नहीं गया वह ? सारा भारत छान डाला सूफियों में मिला, किन्तु कहीं शान्ति नहीं मिली। और तब वज्रयानी सिद्धों ने उसे अपने में प्रभावित किया। पठान तरुण अनंगवज्र बना। पहली बार भैरवी से उसने संभोग किया तब तक वह योग की कई सिद्धियाँ प्राप्त कर चुका था और उसने वीर्य को स्खलित होने के स्थान पर वज्रोली क्रिया से रोककर उल्टे स्त्री के रज को अपने भीतर खींच लिया। भैरवी का आनन्द नष्ट हो गया। और अनंगवज्र चला गया। शिव के विभिन्न पंथों में रहकर देखा कहीं भी संताप और तृप्ति नहीं मिली।

कापालिक सर्वभक्ष के साथ उसने नर-बलि देखी। और फिर शंकराचार्य के अनुयायियों से मिला, किन्तु वहाँ भी उसे पथ नहीं सूझा।

वह उठ बैठा और आधी रात हो जाने के कारण प्राणायाम करने लगा। जब वह उठा तब श्मशान में से उसने एक स्त्री और पुरुष को आते देखा। स्त्री नशे में लड़खड़ा रही थी। पुरुष उसे संभाल रहा था।

पुरुष कह रहा था, 'शक्ति ! शक्ति ! !

शव पर लेट कर संभोग करके आई हुई स्त्री बकने लगी 'मांस बड़ा अच्छा था ।

अनंगवज्र ने सुना, पुरुष कुछ बोलता जा रहा था फट फट स्वाहा !'

शायद वह किसी प्रेत की सिद्धि कर रहा था। उसके हाथ में नर-कपाल था।

उसे सिद्ध ढेण्ढण की याद हो आयी। देर तक वह सोचता रहा। फिर अचानक ही सरहपा का एक दूहा बड़बड़ा उठा।

चारों ओर फिर सन्नाटा छा गया। गाँव पास ही था। साँझ ही को वहाँ राजपूतों और ब्राह्मणों का वयनजीवियों में दंगा हुआ था। ब्राह्मणों और राजपूतों ने उनके घर लूटे थे, क्योंकि वे वेद निंदक, अधम शूद्र बौद्धों के भन्कावे में आकर दल का विरोध कर रहे थे।

युवक फिर सोचने लगा। सारे देश में रोना है, फिर भी कहीं कुछ

स्थिर नहीं है। नित्य ही राजा परस्पर युद्ध करते हैं। सारा झगड़ा भयानक हो उठता है। जाति बन्धन में मनुष्य छटपटा रहा है। मनुष्य की मुक्ति कहाँ है ?

न जाने वह कब लटककर झपक गया पर जागा तब पौ फट रही थी।

'भूम्बरी ! भूम्बरी ! !'

स्वर सुनायी दिया।

सिद्ध है ! सिद्ध है।

अनगवज्र ने मुड़कर देखा, कुछ गांव वाले दूर ही खाने का सामान रखकर चले जा रहे थे।

अनगवज्र ने सोचा। यह भी सम्भवतः पलिहिप की भांति होगा।

अनगवज्र उठा और भूम्बरी के समीप चला गया।

भूम्बरी लगभग चालीस वर्ष का व्यक्ति था। उसने अनगवज्र को देखा तो बोला, आ जा लड़की आ जा। मुझसे सभोग करेगी।

अनगवज्र चौंका, परन्तु भूम्बरी ठठाकर हँसा और उसने एक घृणित इंगित किया। फिर श्मशान में पड़ी चाण्डाल की जूठन खाता हुआ वह नाचने लगा और तब भस्म में लेट गया।

अनगवज्र समीप चला गया। अब वह समझ गया था कि भूम्बरी पाशुपत था। भूम्बरी उठा और स्त्री का स्वांग करके बोला हाय मुझे छेड़ना नहीं। फिर वह उठा और मन्थर गति से अपने नितंबों को हिलाकर लावण्यित रूप से अनगवज्र के सम्मुख नग्न हो गया।

अनगवज्र ने कहा कुत्सित !

कुत्सित !' भूम्बरी ने चिल्लाकर कहा पशु ! तू पशु है। तुझे पशुपति ने बांध रखा है। बद्ध जीव ! तू साजन है। निरंजन बन ! तू मेरे इस व्रत को कुत्सित कहता है !

अनगवज्र ने कहा पाशुपत ! कारण कार्य योग विधि और दु खान्त—पांचों पदार्थों में से मैं इस विधि को ही कुत्सित कहता हूँ तुम्हारी। इसमें मुक्ति नहीं है। यह सब भी स्त्री का ही शासन है। तीनों लोकों में काल ने योनिरूपी जाल फैला रखा है। उसमें ही सारे उद्भिज, अण्डज स्वेदज और समस्त प्राणी फंसे छटपटा रहे हैं। पुरुष की गो भक्षण

करने वाली शक्ति का तुम दुरुपयोग कर रहे हो।

अनगवज्र ने जीभ पलट दी। वह सुई की नोक से उसे धीरे धीरे छेद कर काट चुका था और वह उसे भीतर पलट देता था। उसने यह सिद्धि प्राप्ति की थी। मूस्वरी देखता रहा और उसने भस्म उठाकर अनगवज्र की ओर फेंककर कहा, मूच्छित हो जा।

किन्तु अनगवज्र हँसा और उसने हाथ फैला दिये जिनकी ओर देख कर मूस्वरी ऐसा देखता रह गया जैसे वह स्थिर हो गया हो।

'कौन हो तुम?' उसने पूछा।

अनगवज्र।

कहाँ से आ रहे हो?

भोट देश से (तिब्बत)।

क्या छोड़ दिया?

मैं वज्रयानी था किन्तु मेरा मन उसमें रमा नहीं। युगनद्ध, युगवद्धा वस्था में भी मुक्ति नहीं है। साधक सब कुछ छोड़कर योनि-पूजा में लग रहते हैं। गन्धर्व श्रम महानील श्रम सारे श्रमानुयायियों में प्रात से लेकर योनि चर्या मात्र रह गयी है।

तो क्या तू अब वज्रयानी नहीं रहा?

नहीं।

फिर कहाँ जायगा?

पता नहीं।'

तेरा गुरु कौन है?'

गुरु मैं चाहता हूँ पा जाऊँ। किन्तु कहाँ पाऊँ?

'कभी गुरु मिल तो मुझे भी दीक्षा देना न भूलना।

मानता हूँ।

तू तरुण योगी है कहाँ सीखा इतना सब कुछ?'

अनेक यात्राएं की हैं, बहुत पढ़ा सारी-सारी रात श्रम देह और चित्त से हठ करके बिता दी। अनेक गुरु रहे हैं। किसी ने कुछ सिखाया किसी ने कुछ किन्तु लगता है कुछ नहीं जानता कुछ नहीं पाया।

अनगवज्र उठा और चल पड़ा। मूस्वरी देखता रहा फिर अचानक

पुरानी तरंग-सी लौट आने पर अश्लील इंगित करने लगा।

ग्राम आ गया था।

तरुण योगी अनायास कुएँ पर ठहर गया और उसने कुएँ पर पानी खींचती युवतियों को देखा, जो उसे देखकर कुछ उत्सुक हो उठी थीं।

'माँ, पानी पिला।'

एक तरुणी ने कलश उठाकर कहा, 'कौन मांग है?'

'माँ, प्यास लगी है।'

'मांग बताओ, जोगी।'

'माँ, गुड़ चाहिए।'

'मरता नहीं?'

युवतियाँ हँस पड़ीं।

तरुण बुद्धि के कारण युवतियों का मादकता के परपुरुषगमन का मांग बड़ा अश्लील था, परन्तु रोमांचक लगता था।

युवती पानी डालने लगी। योगी पीने लगा। पीकर कहा, 'माँ! तेरा मंगल हो।'

युवती ने टोका, 'जोगी!'

'हाँ, माँ!'

'भिक्षा कहाँ लगा?'

'जो न दगा, माँ।'

एक पताम वय की स्त्री ने कहा, 'मेरे साथ चला।'

योगी ने देखा। राजा के अन्तःपुर की दासी-सी लगती थी विलासिनी। कहा, 'माँ! द्वार द्वार जाता हूँ। रखता नहीं, जो देता है, लेता हूँ, बढ़ जाता हूँ। कहीं रुककर नहीं माँगता।'

स्त्री हँसी। कहा, 'तू कभी कुछ चमत्कार भी दिखाता है, जोगी?'

'चमत्कार तो छोटी सिद्धि है, माता। उसमें संताप नहीं।'

'तो नहीं जानता।' तरुणी ने कहा।

पास में एक पोखर भरी थी। उसमें पशु पानी पीते थे। योगी ने उत्तर नहीं दिया। उसी की ओर चल पड़ा और स्त्रियों ने आश्चर्य से देखा कि तरुण योगी पानी पर ऐसे चल कर पैदल निकल गया जैसे वह धरती पर

चला हो।

'जागो!' युवती चिल्लाई, किन्तु योगी ने नहीं सुना।

दूसरे दिन ग्राम में संवाद फैल गया। दत्तात्रेय संप्रदाय का जागी कारटक सुनकर मौन रहा। जागी अनागवत्स अपनी साधना समाप्त करके उठा और घर घर भीख मांगने निकल पड़ा। आज लोग देखने लगे निकल पड़े। जब वह एक द्वार पर पहुंचा वहीं सुमुन्ति तरुणी निकल पड़ी और कहा 'जागी भीतर आ!'

'मां! जागी भीतर नहीं आता।'

'महाफल दूंगी।'

'नहीं मां! तेरे हाड़ मांस में फल नहीं मिलेगा।'

तरुणी का मुंह अपमान से काला पड़ गया। बोली, 'तो फिर अपनी राह ले।'

जागी चल गया। तरुणी वहीं किन्तु धक्की द्वार की चौखट पकड़े खड़ी रह गया। दरवाजा काठ का था। और था जालीदार। उस पर एक युवती की देह बनी थी और बीच-बीच में उसे उभार दिया गया था।

संध्या हो आई।

जागी कारटक ने कहा, 'मार्ग यहां है। दीक्षा लेगा?'

'परन्तु पहले मुझे पथ का इंगित दें।'

'पूछ।'

'ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है कि दंडधारी ब्राह्मण? याग श्रेष्ठ है कि अग्नि कुंड? स्वच्छंद मुक्ति का मार्ग कौन-सा है?'

कारटक ने कहा, 'इनमें कोई भी पथ उतना श्रेष्ठ नहीं, जितना आत्मरमण।'

अनागवत्स ने पूछा, 'अपनापन मिटाना ही यदि श्रेष्ठ है तो स्वामी तुम्हारी उत्पत्ति कहां से हुई?'

कारटक ने क्षण भर देखा और कहा, 'वत्स! गुप्त से ही गुप्त प्रगट हुआ है। यही गुप्त की छाया है। शैवी पुरुष शैव से आता है।'

अनागवत्स ने कहा, 'किन्तु फिर जगदीश की माया क्या सीमती है?'

कारटक हँसा। कहा, 'न यह जगविज्ञ है न दर्पण की छाया है। न

काया है न माया।

अनगवज्ञ न उमका विश्वास दग्वा और फिर पूछा कौन आता है स्वामी य कौन चला जाता है ? जो जानना है वह वहीं समा जाता है ? इस सब म गम्य क्या है ?

कोरन्ट न कहा अवधूत ! न कोई आना है न जाना है। सोचकर देख।

अनगवज्ञ प्रभावित हुआ। बोला महान योगी दत्तात्रेय परमज्ञानी थ। परन्तु स्वामी नव फिर अवधूत क माता पिता गुरु आश्रम गृह कहाँ रहेगे ?

कोरटक ने कहा, अवधूत ! क्षमा ही उसकी माता है मत्य ही पिता है गुरु है ज्ञान। आत्म परिचय ही उसकी स्थिति है। अलख आगन म वह विश्राम करता है।

तो फिर मुक्ति कौन-सा दुख सहगी स्वामी ? कौन विनष्ट हो जाता है फिर भी कौन है जो अजर अमर बना रहता है।

धूनी जल रही थी। उसकी अग्नि की लपट विशाल पीपल क काटे को चाट जा रही थी। आकाश नीला हो गया था। असख्य नक्षत्र निखर आये थ।

कोरटक न देखा ऊपर और कहा अवधूत ! सत्य युग स भी पहले यहा आकाश था। असख्य कोटि प्राणी आये और चल गये किन्तु दत्तात्रेय गुरुदेव के अतिरिक्त किसी न भी वास्तविकता को नहीं जाना।

पेड़ क पीछे एक युवती न अब सिर उठाकर देखा और वहा बठ गयी। उसके पास एक तलवार थी नगी जिस वह सीधे हाथ म पकडे थी। एक झीना काला कपडा ओढ़नी के रूप म उसक सिर और छाती को ढंके था। कजरारी आँखें इस समय नशीली-सी हो रही थी। वासना स उस स्त्री ने अपने वक्ष को वक्ष स मसल लिया और उनकी बात समाप्त होन की प्रतीक्षा करती रही।

अनगवज्ञ न देखा। कोरटक न फिर कहा प्रतीति विनष्ट हो जाती है ब्रह्म अजर अमर बना रहता है।

कौन सूक्ष्म है कौन स्थूल है, कौन डाल है उसकी जड कहाँ है ?

कोरटक ने आग को धधकाते हुए कहा 'ब्रह्म सूक्ष्म है तत्त्व स्थूल है पवन डाल है, मन ही उसका मूल है। यही गुरु का ज्ञान है।

स्त्री ने देखा, अनगवज्र के नेत्र चमक से उठे। मानो उनमें एक विचित्र आकुलता छा गयी। उसका शरीर स्थिर हो गया था। स्त्री ने वृक्ष को छोड़ दिया और अपना आंचल मुंह में भर लिया।

अनगवज्र ने कहा, स्वामी कौन हैं गुरु, शिष्य कौन है ? अनंत सिद्ध से मिलन किस प्रकार हो सकता है ?

कोरटक क्षण भर सोचता रहा। अनगवज्र ने फिर कहा देव ! ब्रह्मकमल का भेद क्या है ?

तेरी कुण्डलिनी जागी है ?

अभी नहीं। किन्तु उसमें ही सब कुछ तो नहीं स्वामी।

'तो सुन कि परमात्मा ही गुरु है जिसे बौद्ध और जैन नहीं मानते। वे शाक्तों और शैवों से प्रभावित हो रहे हैं। परन्तु जान ले कि मुख्य शिष्य आत्मा है। और ब्रह्म कमल ऊर्ध्वमुख खिला हुआ है।

अनगवज्र के मुख पर धूनी की लपट का प्रकाश कांपने लगा। निर्जन रात्रि में पवन सनसनाने लगा। कोरटक वहीं एकांत में रहता भस्म रमाये रहता और कभी-कभी पागलों जैसा व्यवहार करने लगता था। जाति का जुलाहा था कभी फिर साधु हो गया। ऐसे निम्न जातियों के असंख्य सिद्ध हो चुके थे उन दिनों जिन्हें देखकर ब्राह्मण व्यंग्य से कभी कभी मुस्करा भी देते थे, किन्तु जिस तेजी से शाक्त प्रभाव बढ़ रहा था उसके देखते अब उसका विरोध घटता जा रहा था।

युवती को हठात् एक कंपन-सा हो आया। उसने सुन रखा था कि यह लोग कभी कभी विकराल क्रियाएँ भी करते हैं। उसके रोंगटे खड़े हो गये किन्तु तभी उसे अनगवज्र का शब्द सुनायी दिया—

'स्वामी उन्मन कौन है और कला क्या है ? त्रिकुटी का ताला किस तरह खुलता है ? नाद और बिन्दु का भेद बताइए।

उस स्वर को सुनकर वह फिर प्रकृतिस्थ हो गयी। किस पागलपन ने उसे अनगवज्र के लिए लाज-लाज के कूल पर चढ़ा कर यहां भेज दिया था, यह वह अभी तक समझ नहीं पायी थी। वह ग्राम-सुन्दरी थी। उसका

जोगी या ही टाल गया था। प्रतिस्पधा न उम हिला दिया था। एमा भी क्या, जोगी ! जोगी ता स्त्रिया क चरणन चूमत हैं यही वह सुनती रहा थी ! और अनगवज्र ! अनग तो था ही वह लावण्य म हृदय का वज्र भी था।

कोरटक न ऊपर तर आकाश की ओर देखा और कहा उसमन ध्यान है अवधूत ! पवन विधि कला है। इस पवन का नियत्रण ही मनुष्य की प्रारभिक सिद्धि है।

मानता हूँ परन्तु स्वामी ! कुण्डलिनी ही क्या सिद्धि का अन्त है ?

यह रहकर साधना कर अवधूत ! प्राप्तव्य प्राप्त होगा। देख यह आकाश कैसा शून्य है ! यह रव है न ? यही प्राप्य है। रस-सम बनना होगा। उस समय रमणी स रमण करत हुए भी मन विकारग्रस्त न होगा। अब जाकर सो रह।

अनगवज्र उठ गया और एक ओर मगछाला बिछाकर लेट रहा। युवती धीरे धीरे वहा पहुची।

अधकार म किसी न योगी का पाँव छुआ और दबाने की चेष्टा की।

कौन ? योगी उठ बठा।

देखा !

वही युवती।

युवती मद विह्वल सी आगे बढ़ आई, नयन अधमुद म। गधित केश *स उठती बूद-सी योगी क चारा ओर लिपट गया।* उसक होठ अब और पास आ गए, आ गए और पास !

योगी हटा नहा। घबराया नहा। स्थिर रूप स मुस्कराया और कहा 'मा !

स्त्री चौक उठी। एक क्षण एसा लगा जस वह अपन को सभाल नही पाया। फिर फूट फूट कर रो उठी जिसका शब्द कोरटक तक जा पहुचा। उसन पुकारा अवधूत ! कौन रोता है ? कौन दुखी है ?

स्वामी ! माया की पराजय भी पीडित होती है जब उसका छल नही चलता यही देखता हूँ।

कोरटक समीप आया।

'स्त्री है ?

'हाँ, जागी ।'

क्या आयी है ?'

'पूछो माँ म ।'

कोरटक के कठोर हाथ न स्त्री की कलाई पकड ली और अपनी ओर खींचा । स्त्री बिलबिला उठी । उसने कहा 'छोड द मुझे !'

किन्तु कोरटक उस अपना कुटिया की ओर खींच ले चला । अनगवज्र स्तब्ध-सा देखता रहा ।

हठात स्त्री न झटका देकर हाथ छुडा लिया और जोगी अनगवज्र क शरीर स चिपटकर कहा, 'मुझ बचा, निदयी ! यह हिंस्र पशु है ।

अनगवज्र न पास पडा त्रिशूल उठा लिया और कहा जोगी ! क्या स्त्री इतनी व्याकुल कर दन वाली है ?

कोरटक न हँसकर कहा अरे यह माया है ।, स्वय आयी है । इसम दोष नही ।'

'किन्तु यह बलात्कार ह ।'

नारी सब अवस्था म एक ही सत्य के लिए है ।'

स्त्री फूत्कार कर उठी ।

अनगवज्र न कहा 'वह जननी है, कोरटक ' तू विलास म अ धा है । उसे जान दे वह माता है ।

कोरटक चिल्लाया तू मूख है मरा क्रोध नही जानता, अ यथा ।

कोरटक न त्रिशूल उठाया ।

अनगवज्र न हाथ उठाकर कहा, 'रुक दे !'

त्रिशूल कोरटक के हाथ स गिर गया ।

दूर पर मशालें दीखने लगी थीं, कोई कोलाहल-सा उठा आ रहा था । शायद गाँव वाल आ रह थ । उन दिनो स्त्रियो को उठा लाना सिद्धो के लिए आश्चयजनक बात नही थी । फिर भी ग्रामवासी सिद्धो स डरते थे । अनेक अनक आश्चय जो दिखाया करत थे व । शायद अब सुन्दरी की अनुपस्थिति प्रगट हो गयी थी । परन्तु जब भीड आई तब उसन देखा कि कोरटक मुह के बल पडा रो रहा था और सुन्दरी गभीर अवाक्-सी खडी थी । अनगवज्र मुस्कराता सा खडा था ।

भीड आयी कोलाहल छँट गया सन्नाटे के फूल ने पखुरियाँ खोलकर अंधेरे की लहरों पर दो चार साँसें भरीं।

जाओ मा! अनगवज्र का स्वर उठा।

उठ। अनगवज्र ने आज्ञा दी। कारटक उठ खड़ा हुआ।

भयभीत से लोग देखते रहे। सुन्दरी चली गयी।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब जोगी भीख लेने आया सारा ग्राम उसके सम्मुख झुक रहा था और कारटक भस्म रमाये श्मशान में जाकर ध्यानस्थ होकर बैठ गया था मानो वह अपनी ग्लानि को भूल जाना चाहता था।

जब जोगी सुन्दरी के द्वार पर पहुँचा आँसुओं से भीगे मुख ने देखा और कहा, पुत्र!

न जाने वह कितने पश्चात्ताप का स्वर था।

अनगवज्र ने कहा मा आशीष दो। यह पुत्र देश देश भ्रमण करता घूम रहा है। सुख और दुख की यातना अब नहीं रही। सिद्धि का गर्व नहीं रहा मा। केवल शाश्वत सुख चाहता हूँ ताकि मुझे शांति मिले और लोक का अंधकार दूर करना चाहता हूँ। चाहता हूँ वह मार्ग ढूँढ सकूँ जिस पर चलकर संसार का कल्याण हो सके। भोट देश गया था वहाँ से अनादर पाकर लौट आया हूँ।

कहाँ जाओगे जोगी।

माँ! योगी को क्या है? अपना क्या है? पर्वत शिखर आगम कान्तार निर्जन मरु श्मशान और प्रासाद! घूमता हूँ। शायद गुरु मिल जाय। देख चुका हूँ वैभव की छलना। जीवन और मृत्यु बीच में यौवन का भ्रम! इसमें शांति कहाँ है आत्मा को? मन की प्रतीति कहाँ है? अस्थिर चंचल चित्त की स्थिरता कहाँ है? पतंजलि ने कहा था न? समझती हो!

निर्निमेष अवाक् बड़े-बड़े नेत्रों में आँसू की चमकदार बूँदें दिखलाई पड़ीं।

क्या नहीं समझती। उसे लग रहा है कि सामने कोई बहुत बडी वस्तु है जो उसके छोटेपन के बाहर ही रह जाती है। स्त्री की दो मुनाएँ हैं। रूप और यौवन! और जो पुरुष इनकी पहुँच में समा नहीं पाता वह भी

क्या मनुष्य है ? अगम्य है न वह ! इतने महान व्यक्ति को, स्त्री न मोबा था, अपने पाश म बाँध लगी ! अब सुन्दरी म जागी अभाव की अनुभूति। स्त्री की लघुता। जो स्त्री के महत्त्व को दम्भहीनता म अस्वीकार कर देता है पता नहीं स्त्री क्या उसे महान समझती है ? सभवत वह जानती है कि वह पुरुष पर कितना प्रभाव रखती है।

और ऐसे पुरुष को उसने साधना से च्युत करना चाहा।

ग्लानि हुई। ग्लानि का अन्त हुआ ममता। स्त्री के रूप अपने आप म एक चक्र से घूमते हैं। ममता म बड़प्पन है मातृत्व का। कहा, 'जोगी ! तुम्हे गुरु मिलेगा। तुम हिमालय की ओर जाओ वहाँ बडे-बडे तपस्वी रहते हैं। एसा मने सुना है।

'जो आज्ञा, माता !

योगी ने सिर झुकाया और चल पडा।

फिर धरती कितनी बडी ? एक पग म आय जितनी।

आकाश का शून्य कितना बड़ा ? मन म एक हो जाय जितना।

यौवन कितना ? जितना श्वास।

जीवन कितना ? जितना सयम।

और मत्यु ?

उसी के लिए तो गुरु चाहिए !

जोगी का गीत गूजन लगा—

थान द गोरीए गारखनाना
माई त्रिन प्याल प्याला
गिनान की डाहीला पानपू
गारख बाला पोढ़िना

हे गोरी ! गोरख-बाल के लिए जगह छोडो। उसने तीन प्याले का प्याला पिया है। नाग की पालकी डाली है। स्वर्ग-लोक की अप्सराएं मृत्यु लोक की स्त्रियां और पाताल-लोक की नाग कन्याओं के लिए गोरख बालक को प्रभावित कर लेना बहुत भारी काम है। उसने माया को मार दिया है घर-बार छोड़ दिया है कुटुम्ब और भाई-बन्धु त्याग दिये हैं।

स्त्री ने सुना !

स्वर धीरे धीरे गाँव में दूर चला गया।
जोगी चला गया था।

२

अनगवज्र स्नान करके सरोवर में बाहर निकला। गंभीर स्वर में किसी ने पुकारा गोरक्ष!'

आदेश! गुरुदेव!

अनेक वर्ष व्यतीत हो गये थे। नेपाल की पथरीली भूमि में योगी अनगवज्र को गुरु मिल गया था। गुरु का नाम था मत्स्येन्द्रनाथ। वे जाति के ब्राह्मण थे। उनका नाम था विष्णु शर्मा। बारेणा देश उनकी जन्मभूमि थी। उनका चर्या नाम था श्री मीननाथ पूरा नाम था श्री पिप्पलीनाथ और गुप्त-नाम था भैरवानन्दनाथ। उन्होंने समय समय पर अनेक सिद्धियाँ दिखाई थीं। उनके निवास में पन्ने उनका नाम वीरानन्दनाथ पड़ा फिर इन्द्रानन्ददेव और अंत में जब मकट नदी में बैठकर उन्होंने समस्त मत्स्यों को वर्पित किया तो उनका नाम मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में दूर दूर तक फैल गया। वे श्री ललिताभैरवी अथवा पापू शक्ति के उपासक थे। उनके गुरु भाई जालंधरनाथ भी प्रसिद्ध व्यक्ति थे जिनका शिष्य कण्हपा अब ख्याति प्राप्त करने लगा था। मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप के चन्द्रद्वीप में पहली सिद्धि प्राप्त की थी और अब नेपाल में वे अत्यन्त ही सम्मानित थे।

जब अनगवज्र को उन्होंने देखा पहली ही दृष्टि में वे उसके भीतर छिपी शक्ति को पहचान गये। उन्होंने देखा कि शिष्य होने के योग्य यह तरुण अवश्य ही नाथ मार्ग को प्रशस्त करेगा। वे सिद्धामृत कौल थे। उन्होंने देखा कि अनगवज्र साधना की एक ऊँची सीढ़ी तक जा पहुँचा है, जिसके आगे मार्ग नहीं पा रहा है तो उन्होंने उसे दीक्षा दी। जिह्वा अर्थात गो को जो पलटकर अमृतत्व के मार्ग में आ गया था इन्द्रिय अर्थात गो पर जिसका अधिकार था उसे उन्होंने गोरक्ष का नाम दिया और स्वयं आदिनाथ महादेव का-सा रूप अपनी भाँति उसे भी धारण कराया। अनग

वज्र अब गोरखनाथ हुआ। उसने मेखला, शृंगी, सेली, गूदरी, खप्पर, कर्णमुद्रा, बघंबर, झोली आदि चिह्न धारण किये। अपने विशाल कुण्डलों के कारण वह बड़ा ही प्रभावशाली दिखाई देने लगा। धधारी उसके पास रहती, जिसे उसने स्वयं बनाया था। अधारी, सोटा धारण करके शरीर में भस्म लगाकर गुफा में रहने वाला गोरखनाथ अपनी अखण्ड साधना में लग गया था।

प्राचीन कौल साधकों की परम्परा में मत्स्येन्द्रनाथ का अपना महत्त्व था, क्योंकि उन्होंने उसमें अपना योग दिया था।

जिस समय अनंगवज्र व्याकुल-सा पहुंचा था, गुरुदेव समाधि में बैठे थे। समाधि खुलने पर देखा एक तरुण बैठा था, जिसने उठकर दण्डवत् किया।

क्षण-भर देखा और कहा, 'वत्स! व्याकुल है?'

अनंगवज्र ने कहा, 'पथ नहीं सूझता।'

'कारण?'

'कामना, काम!'

'चारों ओर आग लग रही है न?'

'हां देव।'

'तो सिद्धामृत पथ में आ, वत्स! पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर। नारी इस मार्ग में प्रतिद्वन्द्विनी है। उसका संग पूर्णरूप से वर्जित करना होगा। साहस है?'

'पालन करूंगा, गुरुदेव! यह तंत्र, मंत्र...'

'नहीं, वत्स! इनसे भी परे। और ऊपर उठना होगा।'

'तो क्या लोक का कल्याण इसी में है?'

'वत्स, इसी में पिण्ड का कल्याण है। प्रत्येक व्यक्ति पिण्ड है और पूर्ण है। उसी में ब्रह्माण्ड है। उसकी पूर्णता ही पथ प्रदान करेगा, वही लोक का कल्याण बनेगा।'

'किन्तु गुरुदेव! चारों ओर अंधकार है। प्रजा अंधविश्वासों में डूब रही है। शाक्त केवल योनि जाल में फंसे पड़े हैं। मैंने देखा है। पश्चिम के मुसलमान हो गये लोग कुछ भी नहीं सोचते, वे आत्म-तत्त्व को नहीं

जानत । उच्च और नीच जाति क भेद स लाग ग्रस्त है । वच के भार म ब्राह्मण सबका दबाय ह रह हैं । राजा प्रजा का भूल कर स्वेच्छाचार और कामवासना म डूब हुए हैं । सब-कुछ जकड़ा हुआ है । और मनुष्य मत्यु और काम के मुख म पड़ा तडप रहा ह । शैव शाक्त गाणपत्य पाशुपत वष्णव दत्तात्रेय कापालिक और न जान कितन कितन सम्प्रदायों म मनुष्य को माग नही मिल रहा है । यह क्या हो रहा है देव ?

वत्स ! साधना कर ! धय रखकर मनुष्यता प्राप्त कर ! इस सब को पवित्र करना होगा । लाक म फिर स मर्यादा स्थापित करनी होगी आदिनाथ न इस माग की शिक्षा बहुत पहल दी थी । पता नही कब ? निरतर कौल साधकों ने इस माग बनाया है और यह साधना प्रचण्ड चलती रहेगी ।

गुरुदेव ! आपन लोकों को उद्धार लिया ।

वत्स ! तुझ ही मेरा काय पूरा करना होगा ।

और इसके उपरान्त साधना का प्रारम्भ हो गया ।

गुफा क द्वार पर खड हुए गोरखनाथ न सिर झुकाकर हाथ जोड़कर गुरु को प्रणाम किया ।

वत्स !

आदेश गुरुदेव !

मत्स्येन्द्रनाथ गुफा के बाहर आ गय । क्षण भर सुदूर पवतमालाओं को देखत रह और फिर कहा वत्स ! मैंने तुझ अपना समस्त ज्ञान दिया है । कुल और अकुल का अब तेरे सामने कोई भद नहीं रहा । समस्त म शक्ति और शिव अविच्छिन्न भाव म विराजमान हैं । सहज म तुझ समरस प्राप्त हो गया है । कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर भी जो द्वत बना था उस तू नष्ट कर चुका है । चक्रयान की साधना मध्यम अधिकारी क लिए है। जो द्वैत भावना के पर है उस ध्यान धारणा और प्राणायाम किसी की भी आवश्यकता नही । यही अकुल कौर माग है जिसम योगी कौलज्ञान की सीमा स आगे निकल जाता है ।

गोरखनाथ न चरणों को स्पश करके कहा आदेश गुरु आदेश !

वत्स ! किसी समय मैंने कामरूप म साधना की थी और तभी मैं

इधर आ निकला था। उस समय वहाँ घर घर म योगिनी कौलमत फला हुआ था। बहुत विचार करके मैंन देखा है कि अब समय आ गया है, जब आदिनाथ के उपन्न को लोक म प्रतिष्ठित करना है। अन मैं कामरूप की ओर जाता हू, क्योंकि वहाँ के शक्तिपीठ म नितात परिष्कार की आवश्यकता है। और मैं चाहता हूँ कि तू पश्चिम की यात्रा कर और नया सन्देश लोगों म फला। लोक म अंधविश्वास है। ससार भूल गया है कि मनुष्य की कितनी शक्ति है कि वही परमशिव का रूप है और इसीलिए वह असख्य यातनाओं म भटक रहा है। दरिद्र, धनी, राजा और प्रजा सब व्याकुल हो रहे हैं। जाति और वश का मिथ्या गव अहकार को प्रश्रय दे रहा है। पश्चिम के म्लेच्छों के आवागमन से हिन्दू जातियों का गव बढ़ रहा है। वत्स! नया आलोक फलाना होगा। बौद्धों के अनीश्वरवाद न साधनाओं को खण्डित कर दिया है।

गोरखनाथ न कहा 'गुरुदेव! इसी दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। यह कुल ही शक्ति है अकुल ही शिव है। उस शिव का कोई कुल नहीं कोई गोत्र नहीं, व तो अनादि अजन्मा और अनन्त हैं।

ठीक है वत्स! उस शिव की जब सृष्टि करने की इच्छा होती है तभी वह शक्ति बनती है। शक्ति से ही सब-कुछ जन्म लेता है। वे दोनों अभेद हैं। शक्ति ही इसलिए उपास्य है, क्योंकि शक्ति के बिना शिव भी शव है।

गोरखनाथ ने कहा, 'गुरुदेव! फिर मैं आपके दर्शन कहाँ प्राप्त कर सकूँगा?

वत्स! प्रजा म नया जीवन फलाना होगा। आज जो इस भूमि म वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार दक्षिणाचार वामाचार, सिद्धान्ताचार आदि फले हुए हैं यह स्मरण रखो कि हमारा कौलाचार इन सबसे श्रेष्ठ है और वही मनुष्य के कल्याण का माग है। वेदाचार सबसे निकृष्ट कोटि की उपासना है। उनमें कुछ भी नहीं है। वष्णवाचार और दक्षिणाचार भी पशु भाव के साधक के लिए ही उपयुक्त हैं। वामाचार म यदि वासना इतनी न होती तो वीरभाव के साधक को उसम भी सिद्धान्ताचार के अङ्क की भांति अधिक सफलता मिलती। किन्तु कौलाचार सबसे ऊपर है। इसम कोई नियम नहीं। सर्वोच्च साधक ही इस दशा तक पहुचते हैं।

जिनम किमी प्रकार का भी भन नहीं यही कौन है। सिद्धकौन मत सार म समस्त मार्गों म श्रेष्ठतम है। इसी का गन्न जाकर न्नि न्नि म फैलाओ। तुम्हार निग्य नग और महानग कहाँ हैं ?

गुरुदेव व भिक्षा लान गय हैं।'

'तो फिर उनके आने पर उन्हें भी साथ ले ला।

जो आज्ञा गुरु !

जिस समय नग और महानग भिक्षा प्राप्त करक लौटे उन्होंने देखा कि गोरखनाथ विभोर होकर गा रह थ—

परब्रह्म रमता राम स चौगान का धुन गया। अभिमान म क्या भूला हो ? पृथ्वी और आकाश म कोई अन्तर नहीं यह तो बचन मुक्ति का मदान है। उस पद म भी अनन्त मुक्ति है और इस अनन्त म पद यहाँ ना है उस पद के ही यह अनन्त उपाय हैं। भीतर म जब न्न पद म परिचय हो जाता है तब सारी अनन्त मुक्ति न्न पद ही म समा जाता है। ब्रह्मान्त नाद प्रहरन है किन्तु बिन्दु ह्योल्त है। यम इन किया ता उसकी चौगनी है। मूलाधार को दवाकर दवता म बठो तो आवागमन मिट जाएगा। सहज की जीन है पवन का घोड़ा है मन की लगाम बनाओ चेतन को वनाओ सवार और सवारी करत हुए गुरु द्वार तक पहुँचो। मैंने त्रिभुवन को लखान कर लिया लक्ष्य कर लिया, ध्यान द्वारा पर यह नहा मिला। नित की प्राप्ति हुटी निखाता ने भाव उत्पन्न किया तो जिस मैं ढूँढ़ता जा रहा था वह मैं ही हो गया। जब मैं कहता हूँ कि वह है तब वह न्न्यिाग नहीं करता यदि वह न होता तो अनन्त सिद्ध क्या कायाा को कष्ट दत रहत ? सच तो यह है कि मन साधना का उद्देश्य हीरे म हार का बीधना रहा है।

गुरुदेव जा चुके थ। उनकी धूनी अब सूनी हो गयी थी। गोरखनाथ न कहा गुरुन्व स्वय आदिनाथ हैं लग ! अब शीघ्र हा समस्त लोक म सत्य माग की प्रतिष्ठा होगी। उसे कोई नहीं रोक सकगा।'

वे नन्द महालग न आश्चय स सुन। गोरखनाथ न आकाश की ओर देखकर कहा, 'क्या सचमुच आदिनाथ का माग लोक का पथ बन जायगा ? यह घृणा समार स दूर हो सकेगी ? कितना क्षुद्र हो गया है यह मनुष्य

किं अपन ही जाल को सर्वोपरि और सवशक्तिमान समझना है !

लग न कहा गुरु प्रवर ! आदेश ?'

क्या है वालक ?'

गुरु प्रवर ! आज मुझे फिर वही बौद्ध मिला था।

क्या कहा उसन ?

'उसन कहा—तुम्हारे गोरखनाथ साधना म च्युत हो गय, इसीलिए अनगवज्र न स्मरर मन बदल गये। स्वय मत्स्यन्द्र और जालन्धर एक ही गुरु के शिष्य थ जो बौद्ध वज्रयानी थे। मत्स्यन्द्र कौल सिद्धामत पथ क अनुयायी हुए जालन्धरनाथ कापालिक मत म चल गय फिर भी वे तो बौद्ध साधना म इतनी दूर नही गये। तुम क्या इस गोरख क चक्कर म फँस रहे हो ?

हा लग, यह सत्य है। जालन्धरनाथ पूव म निवास करते हैं जहा ब्राह्मणा का अनिचार अधिक है। किन्तु भरवी चक्र म अब ब्राह्मण भी प्रवश करत हैं। यह क्या मूखता नही कि केवल उसी समय वण भेद मिटता है बाद म फिर प्रारम्भ हो जाता है ? वण का भेद झूठा है। बौद्ध सिद्धो ने अनक महामुद्राओ की जाति अपना ली किन्तु फिर भी क्या व इस विभेद को मिटा सके ? केवल योग माग ही इस बन्धन को हटाकर समस्त मनुष्यो के जाना को तोड सकता है।

तो क्या सब वाह्याचार बदल जायगा ?

बदलेगा, वत्स ! बौद्ध धम ही कितना बदल गया है ? ब्राह्मण पुराणो क देवताओ के साथ बौद्धो के निवृत्तिपरक दवता भी प्रवत्तिपरक होकर आ गय हैं। जीवन की निराशा ने इन सबको भोगपरक बना दिया क्योकि व कही भी मुक्ति का माग नही देख सक। जिस समय मन विज्ञानवाद का अध्ययन किया मैंन उसमें केवल निषेधात्मकता देखी। यह समस्त ससार व केवल विज्ञप्तिमात्रता म मानत ह। आलय विज्ञान के प्रवाह म एक क्षणिक विज्ञान दूसरे को काय-कारण शृखला स उत्पन्न करता है और वही चित्त है। बोधिसत्वो पारमिताओ के अपार भ्रम म मैं कोई पथ नहा देख सका। रसेश्वर शव और समस्त मतो को मैंने देखा, किन्तु वे सब विभिन्न पथो पर ले जाने वाले हैं।

लग और महालग बढ गय। गोरखनाथ न फिर कहा 'सार सम्प्रदाय अलग अलग हैं परन्तु मुझ सबम साधना पद्धतियाँ एक ही और आती दिखाई दे रही हैं। व सब ही वाह्याचार का अधिक मन्द द रही हैं। समस्त म मूलत अद्वय की साधना का प्रयत्न है। बौद्ध भी तो प्रज्ञा और उपाय का एकात्म करत हैं। परन्तु सब पर छा गयी है मिथुनपरक व्यभिचार की जुगुप्सा। भग एक राक्षसी की भाँति बिना दाँत क ही सब कुछ खाय जा रही है। मैंने पतजलि को पढा है। परन्तु पतजलि का योग एक बहुत विशाल परम्परा स कुछ हटा-सा लगता है। मरी व ा इच्छा है कि यह बिखरे हुए पथ एक हो और इस्लाम के अनुयायी जो आ रह हैं वे भी हमारे माग को पकडें। इसम न ब्राह्मणों का दम्भ रहगा न जाति घृणा रहगी न अत्याचार होगा प्रत्यक व्यक्ति म शिव जागगा। स्त्री का मातत्व पुन स्थापित होगा।

महालग ने कहा किन्तु गुरुदेव! स्त्री यदि कामिनी नहीं होगी तो मातत्व तक पहुचगी कस ? क्या शक्ति ही अपन विभिन्न रूपो म अपन विभिन्न काय नहीं करती ?

ठीक कहते हो वत्स! नाथ मे सब तो योगी नहीं हो जायेंगे। जो साधक होंगे वे योगी होग। योगी ही लोक को पथ प्रदान कर सकता ह क्योंकि वह परमशिव म तादात्म्य प्राप्त करक स्वच्छावस्था को प्राप्त करके सम दशा म आ जाता है। योगी केवल आत्मसाधन क ा सिद्धिमात्र म सीमित नहीं करता वह लोक को भी जाग्रत करता है। करुणा के अवतार कल्पना है महायानियो क करुणचित्त बोधिसत्व भी कल्पना हैं आदिनाथ के उपासक योगी स य हैं। गृहस्थ गृहस्थ रहगा वहाँ म योगी की प्रतिष्ठा होगी, किन्तु गृहस्थ यदि साधना क उच्चस्तर पर नहीं पहुच सकता, तो क्या वह अन्धविश्वासो स भी नहीं उबर सकता क्या उस मोह बद्ध रहना ही होगा ? क्या उस भी चेतना के एक विशष स्तर तक नहीं लाया जा सकता ? इन समस्त बौद्ध सम्प्रदायो म जाति पाँति-वर्ण के विरुद्ध सशक्त स्वर है परन्तु स्थविरवाद म पहले स्त्री का स्थान नहीं था, उसके आने स लोकपरक यह नरात्म्य धम व्यक्तिपरक होकर वामाचार म डूब गया है। कुण्डलिनी को जगाकर वे सहस्रार तक पहुचाते हैं व उस

कमल कुलिश कहते हैं, किन्तु साधना की तो यह निचली मंजिल है। देह का महत्त्व परमशिव का महत्त्व है। उस असुर पद्धति में अपने आप में पूर्ण नहीं समझना चाहिए। योग का मिथुन साधना का पर्याय बनाकर वे मूलतः विषयों में ही फँस गये हैं। इन विभिन्न देवताओं के लिए जो यह समस्त सम्प्रदाय लड़ रहे हैं वे परमशिव को तो उसमें भुला ही देते हैं। देवताओं का स्थान तो नीचा है। ब्राह्मणों का दंभ वास्तव में सबसे बड़ा रोड़ा है, जिससे लोक पिस रहा है। सिद्धियाँ प्राप्त करके रसेश्वर, कापालिक, शाक्त, वज्रयानी जीवन-काल को ही सब कुछ समझते हैं।'

महालग ने सिर हिलाया और गुरु की ओर तन्मय दृष्टि से देखा।

चीनागम' गोरखनाथ ने फिर कहा—'वासना का उपद्रव है। वे कहते हैं कि वज्रोपासना अनादि काल से चला आयी है। यक्षोपासना में उसका प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु उसका अन्त कहाँ है? मैं वज्रयान के भीतर रह चुका हूँ। जानता हूँ इसने लोक को कितना घृणित उपदेश दिया है। इसका विग्रह केवल ब्राह्मण से है और इसीलिए नीच जातियाँ इसमें आती हैं, परन्तु उसका कारण है इसमें व्यभिचार की स्वतन्त्रता। ब्राह्मण ही नहीं, महालग, इस ईश्वरहीनता को भी मिटाना होगा जो लोक को देवता दिखाकर छल रही है। शून्य को वज्र की महत्ता देते-देते उसे लिंग पर उतार लाये हैं। ब्राह्मण जिस इन्द्र को उपदेवता मानते हैं, बौद्ध उसे वज्रपाणि कहकर वज्र के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, क्योंकि उनका मूल धर्म ब्राह्मण विरोध था। पाँच ध्यानी बुद्धों के अधिष्ठाता के रूप में वज्रसत्त्व आया जो प्रज्ञापारमिता रूपी शक्ति को ले बैठा और सदैव संभोग क्रिया में लिप्त युगनद्धावस्था में रहता है।

गोरख के मुख पर तिरस्कार की भावना आयी। कहा, 'शक्ति जगदम्बा है। उसका घृणित रूप योगी और साधक क्या देखे? लोक और गृहस्थ भी प्रजनन को शिव की सिसृक्षा सृजन करने की इच्छा समझकर ग्रहण करें उसके पीछे इस प्रकार वासना में दीन न हों। यह जो सकल सम्प्रदाय आज योनि पूजा में डूब गये हैं वे वर्ण और जाति के विरुद्ध होकर ही। किन्तु वेदाचार और वामाचार दो गति हैं साधक को समरस होना चाहिए। तभी यह क्रियाएँ वामाचार में गुप्त रखी गयी थीं। वेदाचार साधना के पक्ष को

लेता हो नहीं। उसका महान क्षेत्र है, जो पिण्ड में ब्रह्माण्ड समा लेता है। इस सबको शुद्ध करना ही मेरा उद्देश्य है ताकि साधना के निम्न स्तर को आत्मसात करके हम उच्च स्तर पर उठ सकें। शून्य वज्र कैसे हो सकता है? नकारात्मकता भोगपरक इसी कारण बनी कि संयम का आधार लिप्ति की अति मान ली गयी। नरात्म्य परमशिव का स्थान कैसे ग्रहण कर सकता है? जो नहीं है वह हुआ कैसे? हम अद्वैत को निम्न कोटि का मानते हैं किन्तु नरात्म्य का अद्वैत हमारी भाँति परमशिव में ऐक्यात्म की चेष्टा नहीं करता।

गोरखनाथ ने गहन विषय छेड़ा, कहा "इसे सहज कहें भी तो कोई कैसे? वे स्कंधमूल आयतन और इंद्रिय मात्र में संसार को बाँधते हैं। उनके परमार्थ और ऐहिक के जंजाल मूलतः विभक्तीकरण नहीं जानते हैं। गगन तत्त्व का भेद वे नहीं जानते। मुक्ति का उनका पक्ष विषयसुख ही है। सिद्धों का सारा कार्य चर्चा में समाप्त हो जाता है। चित्त ही उनका संसार है। वे उसे ही बुद्ध और मुक्त मानते हैं। पाशुपत भी चित्त को ही पशु मानते हैं। किन्तु शून्य में विहार का तात्पर्य क्या है? जब देह ही ब्रह्माण्ड है तब परमशिव के अतिरिक्त सत्य क्या है? संसार में अनंग रहकर गृहस्थ भवभाग करे वहाँ तक तो ठीक है किन्तु भोगी का ध्येय तो और ऊँचा होना चाहिए।

लोग और महाराज ध्यान से सुनते रहे। गुरु का एक एक शब्द वे पी रहे थे। गोरखनाथ ने फिर कहा— चित्त से भव निर्माण होता है अवश्य परंतु भव तो शक्ति का ही रूप है। मन तो और भी ऊपर है। वह परमशिव है निर्गम अव्यक्त। यह संसार भ्रांति नहीं है परंतु संसार अपने आप में अंत नहीं है जैसा कि सिद्ध लोग मानते। भ्रांति के जिस अंत को वे निर्वाण कहते हैं वह तो साधना की निचली मंजिल है लोग! उससे ऊपर उठना होगा। नाद बिंदु शक्ति सूर्य कुण्डलिनी में भी ऊपर चित्त का निरोध है। सिद्ध सरहपा ने कहा था कि उसे ना जानो तो शून्य का तादात्म्य होगा। किन्तु शून्य में शिवत्व कहाँ है? *नागार्जुन ने सबज्ञान के* विनाश को निर्वाण माना था किन्तु अद्वैत में तो महाज्ञान प्राप्त होता है जब वह स्वयं शिव बनकर साक्षात ही ज्ञान बन जाता है।

आकाश में अनेक पक्षी उड़ जा रहे थे। धरती के आँचल पर उठा हुआ

था पवन। धूनी जल रही थी और महायोगी गोरखनाथ शिष्यों को समझा रहा था। उसने फिर कहा—'तथता ही यदि परमार्थ है तो जीव का प्रवाह केवल चित्त में ही सन्निहित है, ऊपर कोई नहीं। वह जो परमशिव है वह क्या रहा फिर? ये सब त्रिभुवन शून्य निरंजन को ये अभाव ही मानते हैं। उत्पादविहीन अनादि, अनन्त, अद्वय है वह उनका शून्य, परन्तु उसका भाव क्या है? अव्यक्त और अभिधाहीन को वह मानते ही नहीं तभी वे परमात्मा में कोई तादात्म्य नहीं कर पाते। प्रतीत्य समुत्पाद का निषेध क्या नैरात्म्य ही नहीं है? निर्वाण से ऊपर जो महासुख है तो निर्वाण भवमुक्ति कहाँ है? और महासुख किससे तादात्म्य है? कैसी शून्यता है? सरहपा शून्य को करुणा मानता था किन्तु करुणा शून्य की किस अभिव्यक्ति का स्वरूप है? करुणा का भाव सदैव चाहिए। करुणा ने ही प्रज्ञा और उपाय को जन्म दिया है जिसने मिथुन द्वन्द्व में व्यभिचार घुमाया है। नग्न! पिण्ड में क्या नहीं है? देह में ही लिंग और योनि है। उनके मिलन के महासुख को यह लोग स्त्री की योनि में ढूँढ़ते हैं! स्त्री की योनि शक्ति का प्रजनन स्वरूप है। तादात्म्य का सुख देह के भीतर है। योगी को तो अपने ही पिण्ड के भीतर सम्भोग का सुख है। द्वन्द्व बाहर नहीं भीतर है। पंच तथागत वराचन आदि अपनी अपनी सिद्धियों में बाह्यमिथुनबद्ध हैं। शिव और शक्ति का मिलन देह के भीतर ही है। वे प्रज्ञा को धर्म, उपाय को बुद्ध और संघ को युगनद्ध मानते हैं। तभी गर्भधातु वज्रधातु ने व्यभिचार को जन्म दिया है। चित्त का वे हनन करते हैं, निरोध नहीं। मन को अगन धरते वे राग और विराग दोनों को त्याज्य कहते हैं। राग को करुणा मानकर वे वज्रात्मता को ही सत्य मानते हैं। किन्तु मानना मैं वे कुरुकुल्ला और महाकाल के उपासक हैं। मैं इन्हें श्रेष्ठ नहीं मानता। सरहपा भी देह में ही सब-कुछ मानता था, परन्तु देह का अन्तिम सत्य उसने नहीं समझा था। कर्मकार योग में भी इन्होंने नैरात्म्य की ही साधना की है।'

गोरखनाथ का स्वर बदल गया और उसने फिर कहा 'बौद्ध वेदादि का अध्ययन करते हैं दुराग्रह मानकर है। सरहपा ने कहा था कि वर्णाश्रमियों का सब-कुछ वर्णाश्रम धर्म पर आधारित है। किन्तु ब्राह्मण भेद भी नहीं जानते। वे कर्मकाण्ड में फँसे रहते हैं। परन्तु ये बौद्ध ही क्या

करत है ? ब्राह्मण रडीमुडी का सा वग बनात ह ता बौद्ध भी सग्रह करते हैं। योगी क पास सग्रह क्या हो ? योगी निरन्तर लोक सवा और आत्मचिन्तन करता घूमता रह। क्षपणक जन देह को कष्ट देकर हा समभत हैं कि मुक्ति मिल जानी है। लोकायत और सांख्य मतानुयायी भी मोहग्रस्त हैं। किन्तु मुभ सब सम्प्रदायो म एक वस्तु दिख रही ह कि स्त्री घुसी हुई है और यभिचार का बोलबाला है। इस सब का शुद्ध करना हागा। स्त्री का साधना म यह रूप निंद्य है। शिव तो ग्रमर म बालक रूप है समस्त राग और निर्वृत्ति स परे ह वह ! भोट दश म बौद्धा म नर बलि तक प्रचलित है। कवल ग्राडम्बर ही उसका रूप है। मैं भोट दश म रहा हूँ। डाकिनी देवी प्रज्ञा का ही नाम है जो वज्रयानी मानत ह और वह सब महामुद्रा हैं जो शाकिनी डाकिनी ह। दवीशक्ति का विशुद्ध स्वरूप उनम नहीं है।

महालग न कहा गुरुदेव ! गुरुदव मत्स्येन्द्रनाथ कहत थ कि जब बुद्ध दयाकार विर्पामित शान्त हात ह तब व ही शिव हात है। तभी अकनिष्ठ स्वग म विशिष्ट माहेश्वर भवन म बोधिसत्व निवास करत है। आदि बुद्ध का तभी काल की सज्ञा दी गयी ह। अवलोकितेश्वर का महेश्वर रूप भी उन्हान तादात्म्य किया है !

गोरखनाथ न कहा गुरुदेव पूज्य ह। उनकी दृष्टि यापक है। मूलत ये बौद्ध निचल स्तर पर है यदि व उठें तो शव ऊंचाइ पर पहुच जायें। कौन सिद्धान्त को अगत बौद्ध मानत हैं ब्राह्मण नहीं मानत वैष्णव नहीं मानत। किन्तु सर्वोपरि सत्य हमारा ही है। किन्तु बौद्ध हमस दूर ह क्योंकि वे पद्धति मात्र म हमारे साथ ह किन्तु वे अनी वरवादी ह अत व हम से दूर है और वष्णव समीप। वदाचार हम सब स दूर है। गुरुदेव कामरूप गये ह शुद्ध करके सबको फटकार पवित्र करन गा। शीघ्र ही कौल सिद्धान्त सम्प्रदाय स्थापित हागा जिसम सब प्रकार के याघात दूर हो जायेंगे। कापालिक मत भी श्रष्ठ है यदि उसम भी कुछ सुधार हो जाये।

महालग न कहा गुरुदेव ! मैंने सुना है कि कण्हपा न बौद्ध साम्प्रदायिकता क भीतर ही कापालिक पद्धतियों की व्याख्या करके उन्हें अपनाया है।

तभी तो मैं कहता हूँ कि सारी पद्धतियाँ दूर नहीं है जो सम्प्रदाय

शुद्ध हो सकते हैं, उन्हें योग मार्ग के ऊपर लाकर एक करना होगा और जो नहीं आयेंगे साथ, वे अवश्य ही निद्य होकर लोक में जुगुप्सा फैलायेंगे। आत्मपरिष्कार करना ही होगा। धर्म के अनेक शत्रु हैं। एक ओर बौद्ध आडम्बर हैं, दूसरी ओर ब्राह्मण की घृणा, तीसरी ओर इस्लाम का व्यक्ति-साधना विरोध चौथी ओर वामाचार पाचवी ओर जैन देहदुखवाद और छठी ओर है घोर अन्धविश्वास। इस समय योग मार्ग ही एक है जो लोक को सन्ताप दे सकता है। नाथ मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है, जो सहज की सच्ची आस्था रखता है घृणा के स्थान पर समरस और व्यक्ति के पिण्ड में ब्रह्माण्ड का दर्शन कराता है विषय और व्यभिचार की जगह ब्रह्मचर्य का पालन कराके साधक को उठाता है देह को सयम देता है दुख नहीं, और अन्धविश्वास नष्ट करके परमशिव का दर्शन कराने की सामर्थ्य रखता है। मठों और विहारों के आडम्बर हटाकर राजा प्रजा को समान रूप से देखता है और गृहस्थ जीवन में साधारण व्यक्ति को भी स्त्री का सम्मान सिखाता है और साधना के क्षेत्र में बाहर नहीं भीतर सुख ढूढता है। तुम देख रहे हो कि यह अनीश्वरवादी सिद्ध अनाचार की सीमा का अतिक्रमण कर रहे हैं। मैं जब सिंध में था तब अपने मन्दिर के हुरुक की चादी की मूर्ति जो भिक्षुओ ने बेच दी थी तब वहा के राजा ने उन्हें प्राण दण्ड दिया। अरबो के शासन में प्रजा अत्यन्त त्रस्त थी। इन बौद्धो ने ही ब्राह्मण विद्वेष में म्लेच्छो को बुलाया था। जब उन यवनो का शासन उखाडकर फिर क्षत्रिय उठे हैं तो कई बौद्ध यवन हो गये हैं। गुणिक नामक भिक्षु मलन्द हो गया और उसने अपना नाम अब भाठर रख लिया है। उसका शिष्य वैसम्भ मक्का गया और अब यवनो का आडम्बर गाधार के पश्चिम के बौद्धो का सहारा करता है। योगी न हिन्दू है न मुसलमान। हम जन्म से हिन्दू हैं परन्तु मुसलमान से हम घृणा नहीं फिर भी हम उनके आदि पैगम्बर के अनुयायी नहीं, परम शिव के साधक हैं। बौद्धो के सहज में कितने कुत्सित अनुष्ठान हैं, यह मैं जानता हूँ। परमगुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने बौद्ध तत्त्व को शैव तत्त्व में समन्वित किया है इसी से वे दोनो में आदर पाते हैं किन्तु समय समीर ही है जब वे नाथ मार्ग में अन्तर्भुक्त इन बौद्ध प्रक्रियाओ की व्याख्या में योग मार्ग प्रदर्शित करेंगे और मुझे उन्होंने इसी की आज्ञा दी है कि मैं इसी शुद्धि का

प्रचलन करें क्योंकि जो बाहर खोजा जा रहा है वह वास्तव में मूल में बाहर देखा जा रहा है जो है सो तो भीतर है। इन बौद्ध तान्त्रिकों का घोर विरोध करना होगा। परमगुरु ने मुझे इंगित किया है और उन्हीं ने मुझे मार्ग दिखाया है। किन्तु वे वामाचार को निम्न स्तर के साधक के लिए अधिक बुरा नहीं मानते महालंग! तभी वे उसका स्पष्ट विरोध नहीं करते। इसीलिए बौद्ध तान्त्रिक उन्हें बुरा नहीं कहते मुझे कहते हैं। समझ गये न? किन्तु गुरुदेव समय देख रहे हैं। वे शीघ्र ही इन बौद्धों का स्पष्ट विरोध करेंगे। लोक में गृहस्थ के लिए शील संयम और शुद्धता स्थापित करनी है, और साधुओं के पापाचार को दूर करना होगा। इसमें बौद्ध ही नहीं हमें सभी से लड़ना होगा। जो योगमार्गी शैव शाक्त ही है और जो शैवागमवादी योग मार्गी नहीं हैं इनको पटक कर शैवागमवादी योग मार्ग में लाना होगा। कण्हपा की कापालिक साधना से अनेक बौद्ध नाथ पन्थ में आ रहे हैं परन्तु जालन्धरनाथ गुरु सम महान होने पर भी अपने मोह को नहीं छोड़ पा रहे हैं और बौद्ध साधनाएँ उन पर अधिक हावी हैं। गुरुदेव ने कहा है कि हलाहल पीकर नीलकण्ठ होने वाले परमशिव की भाँति योग मार्ग स्थापित करके शुद्धि का प्रसार करना है। अनेक उपासना और पद्धतियों को एक स्थल पर लाकर साधु और लोक का कल्याण करना होगा। यही गुरु की आज्ञा है परमशिव का आदेश है।

गोरखनाथ चुप हो गया। लंग और महालंग दोनों स्फुरित से देखते रहे। जीवन का एक नया आदेश सामने था जिसकी कल्पना भी नहीं की थी। उनके सामने जो व्यक्ति बैठा था वह क्या स्वयं उस सामने के विशाल पर्वत से छोटा था? उन्हें लगा उस सामने के पिण्ड में ब्रह्माण्ड समाया हुआ था।

गोरखनाथ उठ खड़ा हुआ। स्वस्थ गौर वर्ण पर पावत्य पवन सहलाहट लेता मचलने लगा। मुख पर भव्य श्मश्रुजाल था शीश पर जटाएँ। योगिवेश। उसी रूप में लंग और महालंग थे। परन्तु उन्हें लगा कि सामने साक्षात आदिनाथ खड़े थे।

लंग ने कहा गुरुदेव! परमगुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने मुझसे एक दिन कहा था कि वत्स! गोरखनाथ सम्प्रदाय को महान शक्ति देगा क्योंकि वह प्रखर

बुद्धि, मेधावी, ब्रह्मचारी और महान साधक है।

गोरखनाथ ने श्रद्धा से सिर झुकाकर कहा वे स्वयं आदिनाथ के अवतार हैं। उनका प्रत्येक शब्द मुझे जीवन में प्रेरणा देगा। कल ही हम लोग यात्रा पर चलेंगे।'

'गुरुदेव! किस ओर?'

'पहले पश्चिम। फिर दक्षिण चलेंगे। और तब तक गोदावरी का वह कुम्भ मेला भी आ जायगा। उस समय वहां चलने से सत्कार्य की वृद्धि होगी क्योंकि वहां प्राय सभी तीर्थों से तथा प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग एकत्र होते हैं।

वे शब्द हवा पर झूमते हुए दूर तक चले गये। तीनों के हृदय में अपार उत्साह उमड रहा था।

योगी चल पड़े। गृहस्थों और साधारणों का ध्यान आकर्षित करना था वे लोग चमत्कार और सिद्धियाँ दिखाते जिससे वे लोग श्रद्धा से उनकी बात सुनते।

गोरख का स्वर अब गूजने लगा, जिसे लोक गुनगुनाने लगा—

मैं बहुत ऊँचे घाट का व्यापारी हूँ। मैंने शून्य की पसारा किया है। मेरे वाणिज्य में लेना देना कुछ नहीं। गुरु के वचन ही मेरी मुक्ति का साधन हैं।

भोग में लाभ डूबा है। भोग देह के बाहर मत ढलो। वैरागी जागी रात दिन भोग करता है, पर बाहर नहीं। मैं परम शिव हूँ मेरी शक्ति मेरे भीतर ही है। वह शक्ति मेरा बन्धन नहीं। गगनमण्डल तक वह झूलती है, गगन ही मेरा शिव है जो मेरे शीश में सहस्रार कमल पर स्थित है।'

ब्रह्मचर्य का वह सन्देश उस समय लोगों को विचित्र-सा सुनाई देता, क्योंकि सारे सम्प्रदाय भोग में स्त्री भोग करते थे। उस स्वर में जब गोरख स्त्री निन्दा करता और लोग को जगाता तब स्त्रियाँ अपने जननी-पद की प्रतिष्ठा सुनकर गोरख से प्रसन्न होतीं क्योंकि लोक में साधना के नाम पर युवती में जो व्यभिचार बढ गया था, उसमें स्त्री की व्यावहारिक मर्यादा काफी नीचे गिर गयी थी। गोरख के प्रति स्त्रियों में बड़ा सम्मान और कौतूहल था। वे उसे भिक्षा देने को टूट पड़ती। गोरख निन्दा करता था,

किन्तु वह निंदा असल में न्दबोधन थी।

स्त्रियां भिक्षा देतीं तो पहले जहां साधक और योगी उनकी जंघाओं में आंखें गडाते वहां योगी गोरखनाथ गाता यह भोली भाली सूरत बाघनी है। इसी ने जन्म दिया। माता है। इसी ने संसार दिखाया है, पर इसी को नाग याद में चिपकाकर सोते हैं।

भोगी लोग सो ही रहे हैं अब भी नहीं जागे। हे अभागे! यह वास्तविक आनन्द भोग नहीं है। अरे यह तो रोग है।

हे माताओ। आओ! भिक्षा घर घर जाओ! कहो कि हे वात्सल्य गोरख पेट भर के भोजन करो। गोरख का पारा भटका नहीं। वह अनाहत नाद सुनता है। उसकी इडा पिंगला में मेल है। पवनरूपी गुटिका के बल से वह आकाश अर्थात ब्रह्मरंध्र में रहता है। कैलास जैसा ऊंचा ब्रह्मरंध्र भी उसकी इसी देह इसी पृथ्वीतल में है। उसने पाताल की स्वामिनी कुण्डलिनी को शून्य अर्थात ब्रह्मरंध्र तक चढ़ाया है।

कभी लोगों से निंदा मिलती। तर्क होते। गोरख कहता—हे पण्डितो! तुम मुझसे पूछते हो पर मैं तुम्हें कैसे बताऊं कि देवता कहां रहता है। अपने आपको पहचानो। देवता से तुम अलग नहीं हो।

इस प्रकार प्रत्यभिज्ञादर्शन के मूलस्वर उसके मुख से फूट निकलते। फिर वह लोकाडम्बर और अंधविश्वास मिटाने को कहता पत्थर के मंदिर में पत्थर के देवता की तुम प्रतिष्ठा करते हो। तुम्हारे भीतर स्नेह कैसे जाग सकता है?

लोग जब स्नेह की बात करता तो भीड़ सुनती।

हृदय का पसीजना है पत्थर को पूजते हुए पत्थर मत बनो। सजीव फूल पत्ते तोड़कर निर्जीव पत्थर की पूजा करते हो? इस प्रकार के पाप से मन क्या तुम संसार में अपने को तार सकते हो? फिर वह कहता तीर्थ तीर्थ में स्नान करते हो। बाहर धोने से जल भीतर प्रवेश कर आत्मा को कैसे निर्मल कर सकता है?

सब यही कहते थे—वैष्णव जैन बौद्ध पाशुपत, सौर गाणपत्य! पर सब वामाचार में डूबे थे। गोरख कहता था पवित्रता से। अतः वह सुना जाने लगा।

लाग वितण्डा करत तो गोरख कहता, 'ह पण्डित ? विवाद के लिए विवाद करने से क्या लाभ ? योगी केवल बोलता नहा करके दिखाता है। वही अवधूत है। जानते हो पत्ते म ब्रह्मा है कली म विष्णु और फल मे रुद्र है। पत्र-पुष्प फल चढाकर तीनो का उच्छेद कर दत हो। बताग्रो तुम किस देवता के भक्त हो ?

इसी प्रकार एक दिन ऐसे ही स्वर पजाब और सिंध म गुजाता हुआ योगी दल बढ चला। अब गोरख के साथ केवल लग और महालग नहीं अनेक साधक और थे। और गोरख गाता—

'अरे, परमतत्त्व तक कोइ नहा पहुँच सकता। वह इद्रिया का विषय नहीं है। न वह वस्ती है न शूय। वह गगन शिखर का बालक बडा रहस्य है उसका नाम कस रख सकत हो ! परन्तु वह तुम्हारे भीतर है। भीतर ही उस पहचानो। व्यर्थ भेद भेद करक परस्पर क्यो लडत हो ?

'वेदा शास्त्रा, किताबी धर्मों की पुस्तका और कुरान म जहाँ का वणन नहीं है, योगी वहा पहुचता है। यह सब सीमित ग्रन्थ है।'

यह सुनकर पश्चिम स आने वाले मुसलमान फकीर जो इस्लाम के पहले की बौद्ध और शव परम्पराग्रो और अग्नि-पूजक पारसिया की परम्पराग्रो स अवगत थ वे इस ग्रोर आकर्षित होत और उनको लगता कि इस्लाम का प्रचार जिस एकेश्वरवाद के नाम पर कट्टरता फला रहा था, वह मनुष्य की अगम्य सिद्धिया और सामर्थ्यों स अपरिचित था। हिदुग्रो और मुसलमाना की पारम्परिक घणा के ऊपर यह एक नय मनुष्य की कल्पना थी, जिसम भीतर की शक्तिया का जागरण था। वह शक्तियाँ जो अभी तक स्त्री की जघाग्रो के बीच अपना कल्याण ढूढती थीं, अब वे स्वच्छ निमल हो रही थी। जिस जीवन म परिवतन नहीं रहा था उसम यह एक नया परिवतन था।

और उस छोटी-सी धूनी का धुआ फलन लगा, और उसकी ज्वाला म अनेक अध विश्वास काठ की भाति आकर भस्मसात होने लग। वह गोरख का नया सपना था। तभी उसने कहा हँसो खेलो मस्त रहो कभी काम-क्रोध न करो, परन्तु कभी भी चित्त की दढता का परित्याग न करो ह जोगी, मरो ! मरना मीठा होता है किन्तु वह मौत मरो जिस मौत से मर

कर गोरखनाथ ने परमतत्त्व के दर्शन किये हैं ।'

३

योगिया की धूनी रम गयी थी। सागल (स्यालकोट) में नगर के बाहर एक उपवन के पास अनेक चर्चाएँ होतीं। वहाँ नगर से अनेक लोग आते और तरह-तरह के चमत्कार देखते। गोरखनाथ का नाम घर घर लिया जा रहा था।

रात हो गयी थी। योगी गोरखनाथ जाग रहा था। दूर कहीं कोई गा रहा था।

महालंग अन्धकार में गुरुदेव को खड़ा देखकर पास आ गया।

'गुरुदेव !'

'सुनो वत्स ! वह क्या गा रहा है ?'

वे सुनने लगे।

'हे राजा रसालू ! तू मेरी विमाता का पुत्र है पर तू मुझे अपना ही स्वरूप दिखता है क्योंकि हम दोनों में एक वही व्याप्त है। तू ही इस राज्य को ले जा राजा गज ने बसाया था जब उत्तर में शत्रु ने उसे हटा दिया था। हे राजा रसालू उठ और म्लेच्छ से युद्ध कर वह शहर को हरा चुका है वह सब का जबरन म्लेच्छ बनाना चाहता है।

मेरे भया पूरन ! तू चौरंगीया हुआ। हाय वह मेरी माता यौवन के गर्व में भूली थी। तभी तो तुझ पर अपनी सौत के बेटे पर उसने दोष लगाया। *धिक्कार है तेरे पिता सालवाहन को जिसने अपने ही पुत्र पूरन की* आँखें निकलवाकर हाथ पाँव कटवा कुएँ में डलवा दिया।

हे राजा रसालू ! ईर्ष्या अन्धी होती है, इसी से माता पिता अभिमान में नहीं रुक पाये। पर मेरे जोगी गुरु के प्रसाद से बिना आँखों के भी मैं देखता हूँ। माँ युवती थी पिता की आयु ढल चली थी। माँ ने कहा था—पूरन ! स्त्री भरवी है, मुद्रा है। वह न माता है न भगिनी। आ मुझे सुख दे। यह पाप नहीं होगा। पर मैंने कहा था—माता ! पाप के अट्टहास मुँह

है। मेरा जोगी गुरु तो कहता है कि बिन्दु को साधे बिना साधना नहीं। माता, यह तो पाप है।' उन्होंने मेरे हाथ-पांव काटे तो लगा, मेरा पाप काट डाला गया। सच्चे गुरु की दया में मुझे तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। हे राजा रसालू! तू प्रजा की सेवा कर और धर्म में रह। मेरी चिन्ता न कर। योग का पथ मुझसे हाथ-पाँव नहीं चाहता। इस चित्त को दबा सक, यही साधना है। पाप हाथ पाँव से नहीं होता मन से होता है।

हे मेरे भैया पूरन! तू चौरंगीया हुआ, तू धन्य हुआ। मेरे मरने पर तो मैं माटी हो जाऊँगा, पर तू मर कर भी अमर हो जायगा। मेरे भुजबल से मुहम्मद कासिम का बेटा कांप उठा था, पर तेरे बिना भुजा के बल से मैं हार कर तुझे सिर झुकाता हूं।'

'मेरे भैया हे राजा रसालू! मां को क्षमा करना। वह फिर भी माता है जननी है। गुरु ने मुझे उबारा।

गीत थम गया।

कौन गा रहा है, महालग?'

सुना है चौरंगीया की शिष्य परम्परा के जोगी हैं।

ये वामाचार के विरुद्ध लगन हैं।

हां गुरुदेव!'

तब ये आदिनाथ का मार्ग क्या नहीं ग्रहण करते? उससे इनका कल्याण होगा।

महालग ने कहा किन्तु !

मेरे पास लाओ इन्हें महालग! मैं समझाऊंगा इन्हें।

गीत फिर उठने लगा था। योगी गोरखनाथ धूनी के पास आ उठे और ध्यानास्थ हो गये।

प्रभात हो गया।

योगी 'अलख निरंजन' पुकारते पथ पर निकल पड़े।

गोरखनाथ ने एक द्वार पर खड़े होकर पुकारा अलख निरंजन! मा, भिक्षा दे!

एक स्त्री बाहर आई।

'क्या है रे!'

'माँ भिक्षा दे !'

सडा मुसतण्डा घूमता है। कुछ काम क्या नहीं करता ?

'मा ! मैं ससार की सेवा के लिए घूमता हू।

कई स्त्रियाँ और पुरुष एकटठे हो गये।

किस ससार की सेवा करता है जोगी ? तेरी जागन कहा है ?

मेरी जोगन मेरे भीतर है, मा। बाहर नहीं। शक्ति का आनन्ददायी स्रोत मेरे भीतर है। बाहर समस्त स्त्रियाँ मेरी माता है।

स्त्री ने कुछ अचकचा कर देखा। कहा ला दे री।

एक लडकी भिक्षा लायी।

यह नहीं माँ ? गोरख ने कहा।

तो क्या लगा ?

मुझे पेट की चिन्ता नहीं माता ! गोरख ने कहा पेट का क्या ? जोगी को अपना धापा नहीं देखना चाहिए। वह भिक्षा मैं मागता नहीं जिससे मेरा पेट भरे। वह तो कोई दे दे तो भला नहीं दे तो भला मुझे तो वह चाहिए जो शिव का नहीं शक्ति का है माता का है।

भीड में कौतूहल जमा।

मुझे चाहिए ब्रह्मचर्य धारण करने वाला तुम्हारा पुत्र जिससे योगी सम्प्रदाय बने जिसमें पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले परमशिवत्व को प्राप्त होने वाले जोगी लोक का दुख दूर करते हुए आत्म साधन करते हुए जगह जगह घूमते फिरें और वामाचार का पाप हटाते जाएँ हटाते जाएँ जाति भेद हटाते जाए प्रजा का दुख। दे सकोगी ! अपना शक्तित्व सार्थक कर सकोगी !'

माता के नयनों में आश्चर्य छा गया।

तरुण पुत्र तत्पर खडा था। शायद उसी के कहने से जोगी गोरखनाथ आया था। पुत्र स्वय जोगी होना चाहता था परन्तु गोरखनाथ ने कहा था कि माता से पूछ कर हो। पत्नी से भिक्षा माग कि माता भीख दे। यदि इतना साहस हो तो जोगी बन। जोगी बनना खेल नहीं है। जोगी बनना गृहस्थी के बोझ से भागना नहीं है एक बहुत बडा उत्तरदायित्व उठाना है। एक बहुत ही उच्चादर्श का जीवन व्यतीत करना है।

'जोगी! मेरा एक ही पुत्र है।

क्या, माँ! शक्ति इतनी निबल क्या हुई? माता के रूप में तो उस कामिनी में भी बढ़कर सशक्त होना चाहिए। अपना पुत्र क्या तू अमर रख सकेगी? काल सिर पर खड़ा है जानती है न? मैं तेरे पुत्र को अपने लिए नहीं मांगता। राजा भी भोगी बने, प्रजा के वीर भी बनें। गृहस्थ उनके उपदेशों पर चले भोग में रहकर भी उसमें स्वार्थी न बने तो परम शिव के लोक में मंगल छा जाए। योगी धूर्त है तो ऐसा जो अपने अहं को ठगता है। भिक्षा माँग कर वह भोजन करता है। उसे कोई संताप नहीं होता। अब किससे भिक्षा मांगता है वह! अपने साढे तीन हाथ के शरीर में, उसी में घूम फिर कर। ऐसा है उसका नगर। जोगी ही ऐसा धूर्त है जो शिव-लोक में सचरण करता है। उसका घर उसका शरीर है हिंदू राम कहते है, मुसलमान खुदा। परन्तु योगी का लक्ष्य तो और ऊपर है। उस लक्ष्य के लिए जीने पर यह झगड़े ही समाप्त हो जाते हैं।

स्त्री की आंखों में आंसू भर आए। पुत्र शायद जाना ही चाहता था। उसी समय उसकी पत्नी उसके सामने आ गयी।

गोरखनाथ ने फिर कहा मां! जोगी वह है जो मन की रक्षा करे। देश के बिना भी लोक का निरंतर उपभोग करे। कनक और कामिनी के त्याग से ही निर्भयता प्राप्त होती है। लोक को वे ही पथ दिखा सकते हैं जो साधना करते हैं। आदिनाथ के सेवक ही राजा और प्रजा के अंधकार को दूर कर सकते हैं। भिक्षा जोगी की कामधेनु है, सारा संसार हमारी खेती है। भिक्षा भी हमारी नहीं गुरु की है। जिनके बड़े बड़े कूल्हे और मोटे-मोटे पेट है उनको गुरु नहीं मिला।

कामिनी ने बढ़कर कहा जोगी! तुम इस तरह तो घर घर उजाड दोगे फिर काम कैसे चलेगा?'

'मां! गोरख ने कहा, 'बौद्धों में बच्चे दान दिए जाते हैं खरीदे जाते हैं संघ के लिए। वह पाप है बच्चे क्या जानें! बहुत से साधू बच्चे चुरा ले जाते हैं ताकि उनके सम्प्रदाय बने रहें और मठ खड़े रहें परन्तु जोगी अकेला रहता है साधना में! वहाँ तो दो के होने ही समाधि-भंग तीसरे के आते ही खटपट और चौथे के आते ही तु

मुझ योगि सम्प्रदाय चाहिए। उन समझारो बडा का जा लोक के कल्याण के लिए सब कुछ छोडकर आएँ। इसा से मागता हू। आज मागता हूँ, कल तुम्हें जोगा चाहिए तो स्वय दागी। रखो, माँ। इम रखो! पण्डिता के भरम म पउी रहो। कहना आसान हाना है कि तु उम वहन क अनुसार रहना कठिन। और बिना रहनी के कहना वास्तव म थाथा ही है। तोता पढ गुन कर कुछ श दो को दुहराता भर है। ऐमे ही अनुभवहीन पण्डित क हाथ म पोथी मात्र रह जाती है। यह कलियुग बुरा है। हृदय म जस भाव होने है वस ही काम भी हाते हैं। सचमुच जो लाटे म हागा वही ता टी म बाहर निकलगा। कोइ हमारी निदा करता है कोइ ब दना करता है, कोई हमम आशा करता है। कि तु यह ता पूण विरक्ति का माग है। यह ता उदास प थ है।

गोरखनाथ चुप हो गया। श द जस घर कर गय थ। यह एक नयी याचना थी। कि तु मा का हृदय काप उठा। कहा जोगी! कही और जिनके एक स अधिक हा उनसे ले जाओ। हमारा पोषण करन को भी तो कोइ चाहिए।

एक दुकानदार ने कहा, 'छोडो जागी। चलो मैं तुम्ह अफीम और भाग खिलाऊ।

लाग हँस पडे। कि तु गोरख ने कहा—'जो अफीम खाकर भाग फाकता है उसम अक्ल कहा स आ सकती है? उससे तो पित्त चढता और वायु उतरती है। जा स्त्री स्वाति जल के लिए चातक की लगन के समान पति स प्रम नही रखती वह स्त्री नहा। ऐस ही वद्य यदि वद्य है ता वह रागी नही। रसायिनी जो साना बनाता है वह भिक्षा नही माँगता और दूर कभी पीठ पर घाव नहा खाता।

भीड छट गयी। पुत्र भीतर चला गया। पत्नी भी। परन्तु माता खडी देखती रही। उसन गारख को जाते देखा और उसके नयना म न जाने किस अज्ञात ममता से पानी भर आया।

अतिम बात उसन गोरख की सुनी जो वह किसी स कह रहा था— सब मनुष्य ज्ञानी नही हो सकते योगी हो सकता है। योगी ही लोक कल्याण कर सकता है क्योंकि वह स्वार्थ के परे होता है। वह राजा नही कि राज्य के

लिए लडे। वह तो सब को माग दिखाता ह। गहस्थ का मानी बनना, व्यसना का ध्यान करना, बूचा का कान न्खिाना और वेश्या का मान करना जसा है वमा ही योगी का माया म हाथ डालना ह। स्त्री के मर जाने पर जा यती होना ह, जा दूसरा के यहा भोजन करन के लिए साधू होता है, और धन नष्ट हान पर त्यागी हाता है इन तीना प्रकारा का व्यक्ति वास्तव म अभागा हाता ह।

वह चला गया।

शाक्त जुलाहा और नीच जातिया क लागा की भीडें नगर क बाहर उपवन म अधिक आन लगा। वहाँ गारखनाथ के सामन कोई छूआछूत नहीं थी। जो लाग लात थ उसम गरीबा का भण्डारा होता था।

योगी खा न और उसे सग्रह नहीं चाहिए।

इस विषय म गोरखनाथ की शकराचाय द्वारा स्थापित ब्रह्मचारिया के मठ पसन्द थ। उस बौद्धा के विलासी विहार बिलकुल पसन्द नहीं थे। वह उन्ह व्यभिचार का अड्डा मानता था।

निस्सन्देह भारत भूमि म यह एक नया प्रयास था। यह एक नया स्वप्न था। तभी गोरख कहता था—'जो तप करता है सयम का सार वस्तु समझता है बाल्यावस्था म ही जिसने काम को जला दिया है, वही जोगी है और तो सब पट भराई करत हैं।'

साधू-वग म सवत्र स्त्री घुस गयी थी। गारख का विरोधी स्वर दिन-दिन तीव्र होता जा रहा था। अब गारख का स्वर नगर पर गूजन लगा था—'जो कथनी कहा करता है वह हमसे छोटा है, वदपाठी उसस भी छोटा है पर जो रहनी रहता है वह हमस श्रेष्ठ है।'

नगरवासी कहत 'यह कसा जोगी है जो अपने को औरो की भाति सर्वोच्च नहीं मानता। इसम इतनी सिद्धिया हैं, परन्तु यह उन पर अभिमान नहीं करता। यह योगिया म कसा दल बनाना चाहता है? कसा जागरण चाहता है लोक म? यह राजा और प्रजा को समान दृष्टि से दखता है। न यह किसी ग्रन्थ का महत्त्व मानता है न जाति प्रथा म विश्वास करता है। यह कहता है कि जोगी तो अकेला ही सिद्धि के चरम लक्ष्य को पाता है, फिर दल क्या? दल चाहता है लोक को उपदेश देने हेतु।

न्हीं दिनों सागर में हलचल मच उठी। गाव का पहाडी प्रान्तों में विदेशी सैनिक छिपकर नगर और ग्रामों पर टूट पड़ते और लूटकर स्त्रियों और सम्पत्ति को उठा ले जाते। वे पश्चिम के म्लेच्छ थे। अरबों की पराजय के बाद ऐसे लुटेरे दल छिपे छिपे राज्यव्यवस्था बिगाड़ते घूमते थे। वे हिन्दुओं की उदारता में धर्मप्राणता समझते क्योंकि काफिरों को मारना उनके मुल्ला श्रेष्ठ कर्म समझते थे। हिन्दू शाही राज्य अब विपत्ति में घिरा-सा समय व्यतीत कर रहा था। तुर्कों के शासन में इरान में अनेक विदेशी फकीर एकत्र हो रहे थे। बहुत से मुसलमान अरब और ईरानी जासूसों के रूप में फकीर बनकर भारत में घुस आ रहे थे और उन्होंने जगह जगह अपनी दरगाहें बना ली थीं और स्थान-स्थान पर बौद्ध उन्हें ब्राह्मणों के विरुद्ध मिलाते थे।[1] शाक्त और अवैदिक शैवों का ब्राह्मणों में संघर्ष बढ़ता जा रहा था। पंजाब से लेकर बंगाल तक जुलाहा जातियाँ विद्रोही हो उठी थीं। दलों में राज्य उठते थे गिरते थे। सामन्तों की प्रतिस्पर्धा भयानक हो उठी थी। बंगाल में पाल-वंश बौद्धों का ब्राह्मणों के विरुद्ध भड़का रहा था। नालन्द और विक्रमशिला तथा सोमनाथ में वामाचार का व्यभिचार बढ़ता चला जा रहा था। ब्राह्मणों में शाक्तमतानुयायी जगह जगह ब्रह्मचारियों के अखाड़े बना रहे थे। बौद्ध विहारों में अपार धन एकत्र हो रहा था। प्रतिहार वंश की अवनति हो चुकी थी। राष्ट्रकूट और पालों की प्रतिस्पर्धा बढ़ रही थी। प्रतिहार के सामन्त चन्देल उच्छृंखल हो रहे थे। त्रिपुरी के कलचुरी बढ़कर अपना प्रताप बढ़ाता जा रहा था। कश्मीर में उत्पल वंश के समय में भयंकर अकाल पड़ रहा था परन्तु बौद्ध विहारों में सम्पत्ति भरती जा रही थी। दक्षिण में श्रीपर्वत वाममार्ग का ऐसा केन्द्र बन गया था जहाँ बौद्ध शैव जैन सब प्रकार के शाक्त एकत्र होते थे।

ऐसे ही समय सागल काँप उठा और अनेक प्रकार की चर्चाएँ सुनाई देने लगीं।

रात हो गयी थी। गोरखनाथ धूनी के सामने बैठे थे। आज चौरंगीया का शिष्यवर्ग आया था। गोरखनाथ ने कहा, योगियो! असाध्य काम को

[1] यह समय महमूद गजनवी के आक्रमण से लगभग ७५ या ८० वर्ष पूर्व का है।

कोई विरला ही साधता है। सुग्रीव ने वालि को मरा हुआ समझकर उसकी स्त्री को रख लिया था। इस पर दोनों भाइयों में लड़ाई हुई। ब्रह्मा ने सरस्वती से भोग किया। इन्द्र ने अहल्या को छल कर सहस्र भग पायी। सुर, नर, गण गंधर्व यह सबमें व्याप्त है। किन्तु गोरखनाथ श्रेष्ठ योगी थे। आप योगी हैं। आदिनाथ के मत में आइये। यह मार्ग मार्ग की प्रतिष्ठापना है। बाह्याचार को छोड़कर परमशिव का ध्यान धारण करिये। अहंकार को त्यागना चाहिए, सद्गुरु की खोज करनी चाहिए। योग-पथ की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। फिर फिर मानव योनि नहीं मिलती इसलिए सिद्ध पुरुषों को समझ कर लो। धोबीपा जो धोबी था और सिद्ध था उसने ध्यान से सुना और कहा—स्वामी गोरखनाथ! आदिनाथ का मत हमारे मत से बहुत अलग नहीं। हम आदिनाथ का पथ स्वीकार करते हैं। किन्तु हम में से बहुत से गृहस्थ हैं वे सब योगी कैसे हो सकते हैं?

गोरखनाथ ने कहा, 'गृहस्थ गृहस्थ धर्म में रहें परन्तु उपदेश ग्रहण करें। योग मार्ग प्राप्त हो। जो मध्यम अधिकारी हैं वे औघड़ रहें जो पूर्ण अधिकारी होंगे उन्हें मैं कुण्डल डाल कर दीक्षा दूंगा। वे प्रतिज्ञा करें कि कभी पथ से विचलित नहीं होंगे।

इसी समय नगर में कोलाहल सुनाई देने लगा और घोर चीत्कार उठने लगे।

महारंग ने कहा, 'यह कैसा कोलाहल है?'

धोबीपा ने कहा 'कुछ नहीं। यह राजा का धर्म है। वह पालन नहीं करता। हम ठहरे योगी। परमात्मा के ध्यान के अतिरिक्त क्या करें? यह म्लेच्छ लुटेरे हैं धन के लोभ से नगर को लूटने आ जाते हैं। तातार तुर्क और अरब जाने कौन कौन हैं।

हठात् गोरखनाथ का हाथ त्रिशूल पर गया और वह उठ खड़ा हुआ। उसका भस्मावृत्त शरीर धूनी की लपट के सामने चमकने लगा। उसने कहा—नहीं धोबीपा! योगी कायर नहीं होता। शूर होता है। वह निर्बल पर कभी भी अत्याचार नहीं सह सकता। वह न हिन्दू है न मुसलमान किन्तु आत्मतत्त्व का शोधन करता हुआ वह लोक रक्षक है जैसे स्वयं आदिनाथ हैं परमशिव हैं। वे परमभोगी हैं परन्तु दीनों के रक्षक हैं। उठो,

धाम्रो श्रानतायियो का नाश करें। यह ग्रसहिष्णु कुबेर मिध मभीषण दमन कर चुके हैं यागि सम्प्रदाय लोक की रक्षा करे।

महानाग ने उस समय शख फूका ग्रौर तब तरुण अपनी शृगिया में हुकार करके साँसें फूकने लगे। खड्‌खड कर चमकते त्रिशूल उन लोगो के हाथ म चमकने लगे ग्रौर व वीयवान ब्रह्मचारी ग्रधकार म अलख निरजन का गजन उठाते हुए नगर की ग्रोर बढ चले। उस गजन को सुनकर नगर में चेतना सी उठने लगी ग्रौर एक तरुण चिल्लाया ग्रलख निरजन! जय! योगी गोरखनाथ की जय!

सारा नगर प्रतिध्वनित होने लगा। योगियो के ग्रकस्मात ग्राक्रमण से कुबेर घिर गये। उनमे मुसलमान तो था न नेता थे वोको उत्तर-पश्चिम की बबर जातियों के लुटेरे थे जो वक्त लूट के लिए ग्राए थे।[1] लुटेरो को त्रिशूलों ने काट दिया।

उनके घोड़े योगियो ने हथिया लिये। तरुण योगियो ने घोड़ो पर चढ कर शख फूके। हर हर करता निनाद उठा ग्रौर योगी के भीम जय जयकार कर उठता चला गया। गोरखनाथ ने पुकारा जय! गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की की जय! योग मार्ग की जय! ग्रादिनाथ की जय!

सपना सच होने लगा।

वही स्त्री सामने ग्रायी ग्रौर उसने कहा पुत्र! मेरे योगी पुत्र! गोरख!

मा! जगज्जननी! योगी गोरख ने पुकारा भीख दो! लोक के लिए पुत्र दो। योगियो का पवित्र सम्प्रदाय इस देश में खड़ा हो जिससे सारी पृथ्वी का ग्रनाचार दूर हो। दोगी मा?

दूंगी! उस समय युवक की पत्नी का स्वर गूज उठा।

योगी गोरख ने उतरकर युवती को प्रणाम करके कहा माता पावनी! दे कार्तिकेय को दे। लोक में ग्रसुर धर्म बन गया है। उसका नाश करने को है।

धावी पान ने कहा ग्रादिनाथ की जय! बोलो! गुरु गोरखनाथ की

---

1 ऐसी ही सेना महमूद गजनवी लाया था।

जय।'

जय-जयकार फिर प्रतिध्वनित होने लगा।

गोरख न नींव रखी।[1]

या भाग खुल गया। छोटे छोटे यति-सम्प्रदाय अब गोरखनाथ के झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे। उनमें बहुतर मुसलमान थे। नाथ के पंथ में सबके लिए स्थान था। परन्तु वह आततायी के विरुद्ध था, उसके विरुद्ध था जो अपनी निरंकुशता से दूसरों को कुचलना चाहता था। गोरख के संदेश से प्रजा में नया आवेश जागने लगा। विभिन्न जातियाँ आने लगीं। वर्ण धर्म के विरुद्ध प्रचार चल पड़ा। जाग जाग! अलख का नाद उठने लगा।

रात को भस्म रमाये योगी घोड़ों पर चक्कर स्फुलिंग त्रिशूल उठाये प्रजा की रक्षा को फेरी देते। लुटेरे भाग गये। धूनी की लपट और धधकने लगी। जो भेंट आती उसमें दीन दरिद्रों का भण्डार बढ़ता चला गया। न वहाँ साधुओं को नशा मिलता, न संग्रह न संचय। वहाँ न महापुरुष थी, न भैरवी। साधु दल एक स्वर से नारी को देखकर कहता—जगजननी! माता!

मानो हवा ही बदल गयी थी। वाम-मार्ग की रीढ़ टूट रही थी। प्रजा में नया विश्वास उठ रहा था। किन्तु ब्राह्मण-वर्ग आतंकित-सा देख रहा था। यह एक सामाजिक विप्लव था। योगियों की साधना का रूप ही बदल गया था। कुछ नया, कुछ पवित्र आ गया था अब। नंगी जांघों में घावों की पीड़ों का ध्यान कर जब योगी उन्हें गोदते तो वह दृश्य अनुपम सा प्रतीत होता। [illegible] के मुख में उसकी धूनि के ऊपर धूनी का धुआं फैलता [illegible] और धीरे धीरे वह गाँव-गाँव पर फैलने लगा। पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान और सीमा प्रांत पर अलख जगाने की पुकार गुरु[illegible] नारों के साथ प्रतिध्वनित होने लगी। यह एक आग थी,

---

[1] इन्हीं गोरखनाथी जोगियों ने अलाउद्दीन से भयानक संघर्ष किया था और नाथ बाबाओं के रूप में इनकी एक शाखा बहुत दिनों तक प्रजा के लिए लड़ती रही। मध्य युग में इनका रूप बदलता गया जिस पर मैंने अन्यत्र प्रकाश डाला है

जिसने पराजित ग्रौर कामुर हृदया म नयी चतना जगा दी थी।

उ ी िना सम्राट ग्राया ि मिध म ए पीर न तोगा को ग्रात-कित कर रखा है। कहा जाता था कि वह पहले बौद्ध जागा था जो मुसल-मान हो गया था। उसने निप्या का हन सगरित कर लिया था जो घोडा पर सवार रहते थे। ग्रौर बरबस वह ग्रपने दल के लिए लागो स भोजन वसूल करता था, नहीं तो पर दण्ड देता था। उसने कुछ सिद्धियां भी हासिल कर ली थीं। उसने प्रजा को उत्पीडित कर रखा था।

गोरखनाथ न सुना तो कहा जोगी होकर वह प्रयाग करता है? यह तो उचित नहीं।

किन्तु गुरुदेव? धावीपा न कहा— उसने जानियो की सना तयो कर ली है। मुसलमान हो जाने के कारण उस म्लेच्छ कापा सहायता दत हैं। वह हिन्दू था तब नीच जातियो म माना जाता था दमा म उसकी इतनी प्रतिहिंसा है।

गोरखनाथ न क्षण भर सोचकर कहा 'योगी घोडाचूली कहाँ है?

व ग्रान है।

जब घोडाचूली ग्राया तो गोरख न कहा योगी! योगी ही प्रजा को कष्ट दे रहा है। शिव प्रवर्तित योगि सम्प्रदायो म स यह जो पनाम ग्रहण कर रहे हैं इनका यह काय क्या स्तुत्य है?

घोडाचूली न कहा नहीं योगी।

गोरख न कहा भवाग्नि मण्णा स बनता है। योगी का सबस बडा गुण सन्ताप है। क्षमा है। सिद्धि इसलिए नहीं है कि वह लोक म ग्रत्याचार करे। वह तो ग्रासुरी वृत्ति है। ग्रौर फिर यह तो योगि सम्प्रदाय के लिए बडी लज्जा का विषय है। ब्राह्मणो म विद्वेष निकालने के लिए क्या योगी शस्त्र ग्रहण करेगा? योगी का ग्रात्मबल क्या होगा? ग्रादिनाथ के उपदेश क्या सारहीन हैं? राजाश्रय बौद्ध तान्त्रिको को चाहिए न कि योगी को। प्रजा भिक्षा दे तो योगी ग्रहण करे। न दे तो योगी क्या डाकू का सा ग्राच रण करेगा?

दूसरे दिन ही योगी चले गये। कई दिन बाद सुनाई दिया कि योगी गोरखनाथ के प्रभाव स वह पीर परिवर्तित हो गया ग्रौर उसने प्रतिहिंसा

का परित्याग करके लूटना बन्द कर दिया और उत्तर-पश्चिम के मुसलमान जोगियों में यह प्रवाद फैल चला कि गोरखनाथ ही मुहम्मद पैगम्बर के गुरु थे। किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक योगि सम्प्रदायों में गोरखनाथ का नाम पूज्य हो गया। वाम मार्ग की शृंखला टूटने लगी। और वे शैव और वे योग मार्गी जो वेद मार्गी नहीं थे गोरखनाथ को गुरु मानने लगे। अनेक बौद्ध तान्त्रिकों में भी खलबली मच गयी और वे गुरु गोरखनाथ की ओर झुकने लगे क्योंकि गोरखनाथ कहता था— भेदों को छोड़ो, योग-मार्ग की ओर आओ और स्त्री की साधना का त्याग करो। ब्रह्मचर्य धारण करो। लोक के कल्याण को उठो। आडम्बर, जाति घृणा को छोड़ो, शिव और शक्ति को पहचानो और परम शिव की सत्ता में विश्वास करो। इतना प्रशस्त था यह पथ कि इस पर चलने के लिए विभिन्न विचारधारा वाले योगियों और अन्य मार्गियों को अधिक बदलने की आवश्यकता नहीं थी।

जिस मार्ग में गोरख जाता उधर भीड़ें दर्शन के लिए टूटने लगतीं। धीरे धीरे गोरख का नाम राजाओं के कान में भी पड़ने लगा। प्रसिद्ध हो चला था कि नाथ-मत के चार प्रचारक इस समय चार महायोगी हैं। उत्तर में मत्स्येन्द्रनाथ है, पश्चिम में गोरखनाथ है दक्षिण में कण्हपा है और पूर्व में जालन्धरनाथ।

इसी प्रकार अनेक दिवस व्यतीत हो गये।

एक दिन गोरखनाथ ने पुकारा : वत्स महालग! आदिनाथ का सन्देश लोक में फैल रहा है।

'हां गुरुदेव!'

तो अब किधर चलने की आज्ञा है, गुरुदेव? लग ने पूछा।

गोदावरी के मेले का स्मरण है?

हां, गुरुदेव!'

'फिर कल प्रयाण करेंगे।

'जैसा आदेश!'

अलख निरंजन!

महालग जब सोया तो थका हुआ था। नींद में अचानक ही चौंककर

उठ बैठा।

'क्या है, वत्स!'

गुरुदेव जाग रहे हैं!'

'हाँ व त्स अभी धूनी जल रही है। मन जाग उठा?'

'गुरुदेव! नहीं जानता। स्वप्न वह नहीं था परन्तु कुछ बेचैनी सी हुई।

माया तो न थी?

'नहीं गुरुदेव! वासना नहीं थी।

'तो फिर?

निष्प्रयोजन बाना।

परम शिव का ध्यान कर, वत्स! शान्ति व अनन्त छन्द हैं।

रात गहरा गयी और गोरखनाथ ने कहा वत्स! जब मन निश्चलता का अनुभव करे तब इस धूनी को धधकाया कर! यही योगी जीवन का एक प्रतीक है। बाबा योग को समझना चाहता है न? देख, इसे देख!

४

सिंहल की राजकुमारी सामदेई अनिंद्य सुन्दरी थी। उसका मोहित सा सौन्दर्य देखकर राजा के पुर में एक हल्की-सी सिहरन दौड़ गयी थी। भर्तृहरि उसका पति था—उज्जयिनी का राजा चन्द्रसेन का पौत्र चन्द्रसेन का पुत्र। भर्तृहरि स्वयं पण्डित था और जब वह राग उठाता था तब गायक भी हृदय कांपने लगते थे। जब सामदेई उसकी ओर हँसती तब राजा भर्तृहरि विभोर होकर कहता देवी! हिमालय के पादस्थ सिंहल में विधाता ने जब तीनों लोकों का सारा सौन्दर्य एकत्र किया तब तुम्हारी देहयष्टि सामने आयी।

लज्जा से चपल हुई रूपमदेई दूध से धोया सी बंकिम नयनों से देखती और तब लगता कि अनन्तकाल से रति इसी प्रकार अपनी भुवनमोहिनी छवि फैला रही है।

राजा कहता 'सामदई ! तुम मेरे लिए अमृत हो। क्या किसी दिन हम-तुमको भी वियोग की असह्य ज्वाला का सहन करना होगा ? मुझे राज्य वभव नही चाहिए, प्रिय ! मैं तुम्हें चाहता हूँ।

सिंहल की सुन्दरी कहती दव ! मैं तो ऐसी सुन्दरी नहीं हू। पुरुष को तो सहस्रबाहु कहा गया है। वह तो चाहे जितनी पत्नियाँ रख सकता है। फिर मुझे आप कितने अधिकार देंगे ?'

राजा लज्जित हो जाता। फिर मदिरा की गन्ध उठती और सुगंधित माम आत दीपाधारों पर रत्नों का चकाचौंध करने वाली शिखाएँ जलती, जिन्हें आधी रात को सामदेई मुट्ठी भरकर कुंकुम चूर्ण फेंककर बुझाने का प्रयत्न करती, किन्तु राजा की तृष्णा का कहीं अन्त ही नहीं होता। वह मानो खेल रहा था। जब इस मृगी से ऊब जाता तो उसे साथ लेकर वन विहार करता, फिर जब मृगी थक जाती तो स्वयं मृगया को निकल जाता। प्रजा की उसे चिन्ता नहीं थी।

महाकाल के मन्दिर में वाममार्गी पाशुपत एकत्र रहते और चमत्कार दिखाकर प्रजा को आतंकित करते रहते।

रात की नीली छाया में जब नक्षत्र झलक आए वन के तीर पर महालग ने धूनी जला दी।

गुरु गोरखनाथ ने कहा, 'वत्स ! यही उज्जयिनी है। बहुत, बहुत प्राचीन नगरी है यह। यहाँ एक भर्तृहरि नामक राजा हुआ था। बहुत विद्वान था। उसने जीवन में भोग और नीति दोनों को देखा और अन्त में वैराग्य में ही उसे शान्ति मिली। सात बार उसने बौद्ध संन्यास लिया किन्तु सातों बार उसने बौद्ध संन्यास और गृहस्थ जीवन में कोई भेद नहीं पाया। वहाँ भी स्त्री यहाँ भी स्त्री। सच्चा विरागी था, अन्त जीवन का उसने छलना का यत्न नहीं किया।

गुरुदेव !' लग ने कहा 'इस समय भी उज्जयिनी में एक भर्तृहरि नाम का ही राजा है।

महालग ने देखा मुड़कर फिर धूनी में फूँक मारी।

गोरखनाथ ने कहा वह जो भर्तृहरि था उसकी एक रानी थी पिंगला। राजा उसके मोह में था। और उस स्त्री ने दुराचार किया ...

अय वातावाल म सम्बन्ध जोस्वर। राजा की बहुत हुआ जानवर। जब जाता तो उसने वैराग्य ले लिया। बहुत हैं यह योगी भी था।'

गुरुदेव भी चुप देखकर वे भी चुप हो गये। गोरखनाथ ने फिर कहा वत्स! राजा भी मनुष्य ही है। उस कर्मानुसार दूसरों पर शासन करने का अधिकार मिलता है। परन्तु योगी जो कर्मजाल काट चुका है वह किसी के भी अधीन नहीं है। वह राजा का भी प्रजा के प्राणों जैसा देखता है क्योंकि योगी का स्तर बहुत ऊँचा होता है। योगी किसी भूमि से बद्ध नहीं किसी का दास नहीं। योगी भिक्षुक नहीं। वह तो सोते हुआ को जगाता है और पहले जगाता है अपने को। यह जो चारों ओर संघर्ष युद्ध-तृष्णा है यह किसलिए? स्वार्थ और लाभ के कारण। किन्तु उसका मूल कारण क्या है? मनुष्य का आत्मतत्त्व का विस्मरण। वह अपना शिवत्व भूल गया है। सात्त्विक धर्म में प्रवृत्ति का तात्पर्य उसने लगाया है कर्म में आसक्ति। जो अनासक्त कर्म करके लोक में रहता है वही वास्तव में योगी है उसके लिए किसी वाह्याचार और आडम्बर की आवश्यकता नहीं। परन्तु जो योगी साक्षात् शिव से एकाकार हो जाना चाहता है उसे तो और भी परे होना पड़ेगा।

गुरुदेव! परम गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का पावन नाम प्रकीर्तित किया है आपने। अनेक वाम मार्गी बौद्ध शैव और मुसलमान वैरागी और अनेक योग मार्गी आपके उपदेश से अपने विभेदों का परित्याग करके विशुद्ध योग-मार्ग के अन्तर्गत आये हैं। प्रजा में आपका पवित्र उपदेश गूँज रहा है। किन्तु एक बात मेरी समझ में नहीं आती।

पूछो, वत्स!

गुरुदेव! परमगुरु मत्स्येन्द्र की जिस दीक्षा ने आपको इस ओर भेजा वे और योगी जालन्धरनाथ एक ही गुरु के शिष्य थे। पूर्व में जालन्धरनाथ और दक्षिण में कण्हपा जिस तत्त्व का उपदेश नाथ-मत के नाम से दे रहे हैं वह आपकी बात नसी पूर्णतया विशुद्ध योग मार्ग नहीं कहती। आदिनाथ का तो एक ही मार्ग है न? फिर नाथ मत के नाम पर इतने मत क्यों प्रचलित हैं?

वत्स सब का प्रारम्भ और अन्त एक ही है। साधन के भेद पद्धतियाँ

में स्वसंवेद्य के कारण है। पुरानी परम्परा को भी तो देखो। आदिनाथ के मत को भूलकर न जाने कितने दिनों में यह रीति घुस आयी है। आदिनाथ के उपदिष्ट मत में यह जो बाह्याचार है, वास्तव में सब योगपरक है। अनधिकारी इसको नहीं समझ लें इसलिए इन पुराने योगियों ने ऐसी भाषा में लिखा है जो निगुरे साधक को कुछ प्राप्त नहीं करा सकती। अब यह जो लिखा है कि भगिनी माता से संभोग करो। यह बाह्य अर्थ में नहीं है। असल में अनधिकारियों ने वस्तु को समझा नहीं। अन्धविश्वास, टोने-टोटके के कारण उन्होंने अर्थ विकृत किया। स्वयं पहले वज्रोली का अर्थ मैं ही गलत समझता था। वज्रोली बाहर नहीं काया के भीतर है। इन भूलों को साफ करना ही योग मार्ग की स्थापना है। भीतर की मस्ती को न समझकर योगी मदिरा पीते हैं। यह भ्रम नहीं तो क्या है? नाथ मत में भी शुद्धि होगी और यही आदिनाथ की इच्छा है। किन्तु यह लोग भी पहुँचे योगी हैं। उन्होंने साधन का भेद परम्परा में पाया है परन्तु भ्रान्त को गये हैं। मैं उन्हें भी उचित मार्ग पर चलने का परामर्श दूँगा, ताकि लोक में भी योग मार्ग की प्रतिष्ठापना हो। राजा यदि योगी हो आत्मतत्त्व का दर्शन कर ले तो वह आदर्श शासन कर सकता है। योगी कुछ भी करे परन्तु वह सर्वदा अलिप्त रहता है।'

महाबल ने सुना। वन में घोड़े दौड़ रहे थे। हाँका लग रहा था।

गुरुदेव! कोई शिकार पर निकला है।

अंधा ही बाहर शिकार करता है वत्स! असली शिकार करना तो इस देह के भीतर कठिन है। इस छोटे से पिण्ड में कितना बड़ा ब्रह्माण्ड है!'

प्रभात की पहली किरण फूटी। शिप्रा के जल पर उजाले ने झाँका। योगी गोरख ने सुना कोई एक लम्बी साँस ले उठा। घने वृक्ष के पीछे जाकर देखा। एक व्यक्ति। बहुमूल्य वस्त्र पहने खड़ा था। हाथ में धनुष और सामने एक बाणविद्ध छटपटाता हुआ मृग। और सामने गोल बनाये खड़ी कुछ हिरनियाँ, जिनकी बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू ढलक रहे थे। अहेरी ग्लानि और व्याकुलता में दग्ध रहा था। मानो हिरनियों के आँसुओं ने उसके मन को बाँध दिया था।

योगी को देखकर उसने प्रणाम किया। योगी न आशीवाद दिया। एक विचित्र भाव उसके मुख पर उजागर हुआ।

हिरनिया न जैसे प्राण भय छोड़ दिया था और हिरन अभी तक तड़प रहा था।

योगी ने देखा और कहा 'अहेरी ! क्षत्रिय है ?

हा यतिराज !

फिर इस निबल को हिंसा का लक्ष्य क्यो बनाया ?

अहरी उत्तर न द सका। फिर जसे उस ध्यान आया। कहा योगी' मैं भत हरि उज्जयिनी का राजा हू। शिकार करना राजाओ का धम है इसीलिए मैंन इसको मारा।

तो फिर उद्विग्न क्या है वत्स ?

मृगिया की कातर दष्टि मुझे बीध रही है।

योगी ने मुस्कराकर कहा माया का जाल एक को दूमरे से बाधता है। एक मारता है दूसरा रोता है और फिर वेदना की कसक स आततायी भी व्याकुल होता है फिर जन्मजन्मान्तर तक प्रतिहिंसा यो ही चलती चली जाती है।

योगी बढ चला।

राजा भत हरि को लगा वह फिर अकेला रह गया था। उसने पुकारा, योगी !'

योगी मुडा।

योगी हो न ? सवशक्तिमान की साधना की है तुमने ! इस मग को जीवित कर दो योगी ! मैं इस वेदना स छूटना चाहता हू। यह सारा वैभव ! यह सारा सुख !'

भ्रम है ! योगी ने कहा।

भ्रम !! राजा को लगा वह जडीभूत हो गया था।

सच ! योगी न क्या कहा ?

क्या मैं भी एस ही मरूँगा ?

मेरी सामर्थ्य !

मैं राजा हू। फिर भी कुछ नही। फिर जीवन म साथकता क्या है ?

क्या यह एक व्यर्थ की हलचल है। कहा, 'योगी! यह सब भ्रम है, तो यह स्वप्न कब तक चलेगा?'

यह तत्त्वखेल सदैव हरी रहेगी, वत्स! संसार एक अग्नि है। उससे मिलकर यह तृष्णा की ज्वाला और बढ़ती है। कुछ कहीं जाता नहीं। यहीं रहता है। जो इसके भीतर में परम शिव रूप को पहचान कर उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है वही इसमें मुक्त हो जाता है।'

'योगी! मुझे ज्ञान दो परन्तु मेरी एक याचना है।

क्या वत्स?'

इस हिरन को फिर जिला दो।'

'वत्स! काल उसे ले गया। तू न मारता तब भी वह मरता। सब-कुछ मरता है। योगी की काया भी नष्ट हो जाती है। प्रवाह में सब बदल जाता है। मृगिया को वेदना तब भी होती। अब तेरी वेदना है कि तूने उसे मारा है। आज तुझे इस कार्य का अनौचित्य दिखाई पड़ा है अचानक करुणा के कारण—अन्यथा जब तक तू लिप्त था, कुछ भी नहीं सोचता था। यह क्या है? कैसे है, हम क्या कर रहे हैं कहां जा रहे हैं यह सब उसी के लिए है जो सोच रहा है। सोते हुए को या तो स्वप्न है, या फिर कुछ नहीं। मृग मरा नहीं, वत्स। स्व जीवित है।

राजा ने आश्चर्य से देखा।

मृगियां लौट गयी थीं, क्योंकि मृग मर चुका था।

योगी ने फिर कहा, 'मोही हो गया न? अब वह अनन्त तम में रूपा में फंसता फिरेगा। दया तम का तेरा विनाश हुआ। उसमें नरारज आया और तू ज्ञान ध्यान खो बैठा। अब इसी से तुझे यम के दरबार का भय लग रहा है न, राजा? ब्रह्म ज्ञान के अतिरिक्त सब-कुछ झूठा है। मरने पर जो वैकुण्ठ और स्वर्ग की प्राप्ति है वह असल में चिन्तारोहण ही है क्योंकि उसमें आवागमन बन्द नहीं होता। मन को कुचलकर मन मार न उसे खाली रख। अग्नि का भेद जानने का यत्न कर। यह माया अनादि से चली आ रही है बूढ़ी है। पुराण-पुरुष की संगिनी है। यही बन्धन में डालती है और यही मुक्ति भी देने वाली गुरुवाय की करती है।

है, विद्या से उससे मोक्ष मिलता है।

राजा को लगा, वह ऱ्मिन हो गया था। उसने वक्ष म सिर टेक दिया। योगी चला गया।

मध्याह्न हो गया। मामन्द्इ न शृगार किया और जब वह चित्रशाला म पहुची उसन देखा राजा उदास सा बैठा था। उसे आश्चय हुआ। वह समझ नही पायी।

निकट चली गयी। उसे देखकर राजा हठात उठ खडा हुआ। वह कुछ चकित हुई। उसे देखा उसने जसे धरती न आकाश को। शून्य को देखा हरी भरी वसुधरा न।

राजा अवाक खडा था।

'स्वामी !

वह चौंक उठा।

क्या हुआ ?

'देवी ! राजा ने धीरे से कहा 'यह सब चला जायगा।

कहा ?

काल के मुख म।

रानी हस पडी।

हा। सदा स यही होता चला आया है।

एक दिन तुम भी नहा रहोगी म भी नहा रहूँगा !

देव ! सदैव बने रहने की तष्णा क्या हो ? समय देह देता है आयु रूप बदलती है। काल प्रत्यक अवस्था म तरह-तरह के रूप देता है, उनके अनुसार मन बदलता है। फिर उसका विरोध क्या ? जो है उसका सुख क्या न हो ?'

देवी ! सब कुछ दुख ही तो है। सब दुखी हैं। म भी तुम भी प्रजा भी पशु भी, पक्षी भी वनस्पति भी। यह दुख क्या है ? हम क्या छटपटा रहे हैं ? मैं चाहू भी तो क्या लोक का दुख हर सकता हू ?

सिंहल की राजकुमारी वज्रयानी करुणचित्त बोधिसत्व की उपासिका थी और पचतथागता म वैरोचन ध्यानीबुद्ध की पूजा करती थी। कहा, दुख बोधिसत्व हरते हैं राजन ! हम नहीं हर सकते। यह तो योगी और सिद्धो की बातें है। हम और आप लोक के प्राणी है। इन चिन्ताओ स हम

क्या लना देना ह।'

'ता क्या देवी ! यागी थेप्ठ है ?'

सुनती ग्रायी हू वही मुक्त होता है। परन्तु वह जीवन कठिन है। परन्तु फिर भी नहीं जानती कि मुक्ति क्या है ? छोटे से जीवन मे है ही क्या ? दुख सदव ह। दुख ही है। जो जहाँ जन्म लेता है वह कमफल स। फिर मुक्ति कहाँ है ? ग्रात्मा कहाँ है ? जो है ग्रनात्म है। उस ग्रनाम म जा ग्रद्वय प्राप्त करता है वही सुखी है। लेकिन मैं नहीं जानती। स्त्री हू। स्त्री का सुख पुरुष का सुख है।'

राजा न दखा ग्रौर कहा, किन्तु पुरुष का सुख क्या है दवी।

राजा का सुख प्रजा की सवा है देव!'

किन्तु राजा भी ता प्राणी है न ? राज्य तो सदव नही रहेगा ?

रानी ग्रब ग्रातंकित हुई। भर्राय स्वर से कहा इतना ही जानती हूँ कि जिसका जा धम है उसी का पालन कर। उसे छोडने मे भी ग्रनाचार ही फलता है।

राजा चुप हो गया।

सध्या की गरिक किरणा ने जब धूनी की लपट को फिर चमक से भरना प्रारम्भ किया, गोरखनाथ न दखा कि हतश्री राजा चरणा पर पडा था।

योगिराज ! ग्राया हू जीवन का सफल करने। सब कुछ बहा जा रहा है। मुझ इसम शान्ति कहाँ मिलेगी ?'

कही नही।

तो इस मनुष्य दह प्राणी का कोट फल नही ?'

है, किन्तु केवल ग्रधिकारी के लिए।

म ग्रधिकारा नहीं हू ?

'नही।

क्या योगिराज ?

'पीडा से व्याकुल होकर ग्रान वाला समय क हाथो घाव पुर जान पर लौट जायेगा। योगी का माग ग्रसाध्य है। वह लोक म सबके लिए नही।' राजा योगी नही हो राज्य का सुव्यवस्थित पालन करे किन्तु ग्रपनी को

सवश्रेष्ठ समभकर गव न करे। प्रजा का कष्ट दूर कर। योगी तो सब कुछ छोड देता है। राजा के लिए वही योग श्रेयस्कर है जिसमे वह सब रहे विलासी न हो कत्तव्यरत रह तष्णा और घृणा से पर हो, स्वार्थी और परदाररत नही हो। सब कुछ करके भी उसमे अपने को अलग रखे। इससे अधिक का अधिकारी वही है जो लोक म उपेक्षित दबकर सोई हुई आत्माओ को जगाने निकल पड। गृहस्थी के निम्न स्तर स ऊपर उठे कठोर साधना म जीवन को लगा द और आत्मदान करता रहे। वह माग बहुत कठिन है राजा वह तेरे लिए नही है।

राजा हतबुद्धि-सा बठा रहा।

अहकार को ठेस लगने स व्याकुल न हो राजा। योगी का जीवन बहुत कठिन है। उसम त्याग की छलना नही है। उसम आत्मा को आकाश की भाँति शून्य करना होगा।

करूँगा गुरुदेव! मुझे चरणो म स्वीकार करें।'

तू राजा है वत्स! तूने अन्यो की तुलना मे अधिक सुख देखे हैं। कहते हैं उड्डीयान पीठ के ज्वालेन्द्र राजा ने भी बहुत कष्ट पाकर ही योग माग मे सफलता पायी थी। कामिनी स मुक्ति पाना तेरे लिए अत्यन्त दुष्कर है।

राजा ने दण्डवत करके कहा 'गुरुदेव मुझ अग्नि म तपाइए किन्तु इस जीवन को नष्ट होन स बचा लीजिए।

गोरखनाथ ने सहसा कहा राजा उठ!

भर्तृहरि उठा।

राजा भरथरी! गोरखनाथ न कहा यह लो।

राजा न देखा और कमण्डल उठा लिया।

जा! योगी न कहा महल क द्वार पर खडा होकर अपनी रानियो को माता कहकर भिक्षा माँग ला। यदि तू ले आया तो मैं तुझे दीक्षा दूगा।

राजा ने सुना तो आँखो के सामने अँधेरा छा गया।

कई दिन बीत गये थ। राजा भरथरी ने सचमुच रानियो को माता कहकर भीख माँगी थी जिसे सुनकर सामदेई मूर्च्छित होकर गिर पडी थी। इस घटना के गीत बन गये थ।

राजा सब-कुछ छोड आया था।

गुरु से दीक्षित राजा कनफटा साधू हो गया, एकान्त में राजा ने योग साधन किया।

सूर्य और चन्द्र का योग करके उसने हठयोग किया। प्राणवायु और अपानवायु का योग उसने प्राणायाम के द्वारा वायु निरोध करके प्राप्त किया। इडा और पिंगला नाडियां रोककर उसने सुषुम्ना मार्ग से प्राणवायु का संचारित किया। उसकी नाडियां शुद्ध हो गयी।

गुरु ने कहा, 'मेरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर वायु और उपस्थ के मध्यभाग में लगता है वहाँ एक स्वयम्भू लिंग है और वह एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है। वही अग्निचक्र है। इसी में साढे तीन वलयों में लपेटा मारकर कुण्डलिनी सोयी हुई है। यही शक्ति का व्यष्टिरूप में व्यक्ति रूप है। यही ब्रह्मद्वार का रोध करके सोई हुई है। इसे जगा कर शिव से समरस कराना ही योगी का चरम लक्ष्य है। इसी से मोक्ष का द्वार अनायास ही खुल जाता है। इस शरीर में तीन ही वस्तु हैं जो चंचल है। उन पर अधिकार किये बिना साधना नहीं हो सकती। वीर्य वायु और मन। इनमें से किसी एक को भी वश में करने से बाकी दोनों वश में हो जाएँगी। मेरुदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयम्भू लिंग है। वही पश्चिम लिंग है। जहाँ से पुरुषों में शुक्र और स्त्रियों के रज स्खलन का मार्ग है। वीर्य का स्खलन प्रलयकाल और विपकाल है और यही घातक है। सहजानन्द में वीर्य नीचे नहीं जाता ऊपर जाता है। शुद्ध नाडियों का होना उसके लिए आवश्यक है। मैंने तुझे धौति वस्ति, नेति, त्राटक नौलि और कपाल भाति कर्म सिखा दिए हैं। अब तू कुण्डलिनी को उर्ध्वमुखी कर।

राजा फिर अपनी साधना में लग गया।

दूसरे दिन भिक्षा मांगते हुए जब योगी गोरखनाथ नगर में निकले प्रासाद भूला खडा हुआ दिखाई दिया। आजकल मन्त्री राज्य संभाल था। मामदई ने वातायन से देखा तो कहा योगी को बुलवाओ।

प्रजा में अनेक कौतूहल थे। कुछ लोग प्रासाद के प्रांगण में एकत्र हो गये।

योगी के आने पर रानी ने खड़ी हुई दासी से कहा, पूछ!

सर्वश्रेष्ठ समभकर गर्व न करे। प्रजा का कष्ट दूर कर। योगी तो सब कुछ छोड़ देता है। राजा के लिए यही योग श्रेयस्कर है जिसमें वह सम रह विलासी न हो, कर्मव्यस्त रहे, तृष्णा और घृणा से पर हो, स्वार्थी और परमारथरत नहीं हो। सब कुछ करके भी उससे अपने को अलग रखे। इससे अधिक का अधिकारी वही है जो सार में उपेक्षा देकर सोई हुई आत्मा को जगाने निकल पड़े। गृहस्थी के निम्न स्तर से ऊपर उठ कठोर साधना में जीवन को लगा दे और आत्मदान करता रहे। यह मार्ग अत्यन्त कठिन है राजा, वह तेरे लिए नहीं है।

राजा हतबुद्धि-सा बैठा रहा।

'अहंकार को ठेस लगने से व्याकुल न हो राजा। योगी का जीवन बहुत कठिन है। उसमें त्याग की छलना नहीं है। उसमें आत्मा को आकाश की भाँति शून्य करना होगा।

करूँगा गुरुदेव! मुझे चरणों में स्वीकार करें।

तू राजा है वत्स! तूने माया की तुलना में अधिक सुख देखे हैं। बहुत हैं उज्जैन के पाठ के ज्वालेन्द्र राजा ने भी बहुत कष्ट पाकर ही योग मार्ग में सफलता पायी थी। कामिनी से मुक्ति पाना तेरे लिए अत्यन्त दुष्कर है।

राजा ने दण्डवत करके कहा 'गुरुदेव मुझे अग्नि में तपाइए किन्तु इस जीवन को नष्ट होने से बचा लीजिए।

गोरखनाथ ने सहसा कहा राजा, उठ!

भर्तृहरि उठा।

राजा भरथरी! गोरखनाथ ने कहा यह लो।

राजा ने ऐसा और कमण्डल उठा लिया।

जा! योगी ने कहा महल के द्वार पर खड़ा होकर अपनी रानियों को माता कहकर भिक्षा माँग ला। यदि तू ने आया तो मैं तुझे दीक्षा दूँगा।

राजा ने सुना तो आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

कई दिन बीत गये थे। राजा भरथरी ने सचमुच रानियों को माता कहकर भीख माँगी थी, जिसे सुनकर सामदेई मूर्छित होकर गिर पड़ी थी। इस घटना के गीत बन गये थे।

राजा सब-कुछ छोड आया था।

गुरु से दीक्षित राजा कनफटा साधू हो गया, एकान्त मे राजा ने योग साधन किया।

सूय और चन्द्र का योग करके उसने हठयोग किया। प्राणवायु और अपानवायु का योग उसने प्राणायाम के द्वारा वायु निरोध करके प्राप्त किया। इडा और पिंगला नाडिया रोककर उसने सुषुम्ना माग से प्राण-वायु का सचारित किया। उसकी नाडिया शुद्ध हो गयीं।

गुरु ने कहा 'मरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर पायु और उपस्थ के मध्यभाग मे लगता है वहाँ एक स्वयमू लिंग है और वह एक त्रिकोण चक्र मे अव-स्थित है। वही अग्निचक्र है। इसी मे साढे तीन वलया मे लपेटा मारकर कुण्डलिनी सोयी हुई है। यही शक्ति का व्यष्टिरूप मे व्यक्ति रूप है। यही ब्रह्मद्वार का रोध करके सोई हुई है। इसे जगा कर शिव से समरस कराना ही योगी का चरम लक्ष्य है। इसी से मोक्ष का द्वार अनायास ही खुल जाता है। इस शरीर मे तीन ही वस्तु हैं जो चचल हैं। उन पर अधिकार किये बिना साधना नही हो सकती। वीय वायु और मन। इनमे से किसी एक को भी वश मे करने मे बाकी दोनो वश मे हो जाएँगी। मेरदण्ड के मूल मे सूय और चन्द्र के बीच योनि मे स्वयमू लिंग है। वही पश्चिम लिंग है। जहाँ से पुरुषा के शुक्र और स्त्रिया के रज स्खलन का माग है। वीय का स्खलन प्रलयकाल और विपकाल है और यही घातक है। सहजानन्द मे वीय नीचे नहा जाता ऊपर जाता है। शुद्ध नाडिया का होना उसके लिए आवश्यक है। मैंने तुझे धौति वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपाल भाति कम सिखा दिये हैं। अब तू कुण्डलिनी का उध्वमुखी कर।

राजा फिर अपनी साधना मे लग गया।

दूसरे दिन भिक्षा मागते हुए जब योगी गोरखनाथ नगर मे निकले प्रासाद सूना खडा हुआ दिखाई दिया। आजकल मन्त्री राज्य सभाले था। सामन्त ने वातायान से देखा तो कहा, 'योगी को बुलवाओ।

प्रजा मे अनेक कौतूहल थे। कुछ लोग प्रासाद के प्रागण मे एकत्र हो गये।

योगी के आने पर रानी ने खडी हुई दासी से कहा पूछ! महाराज

सकुशल ता हैं ?

योगी न कहा, अच्छे हैं माना ।

रानी न व्यग्य स कहा अब व अमर हा जायेंग यागी ?

नहीं । यागी न कहा, अमरता आत्मज्ञान का ही नाम है । काया के बन रहन का नहीं ।

फिर योगी ! रानी न कहा 'वह आत्मज्ञान क्या इसी एकात म है ?

नहीं रानी ! एकान्त वह नहीं जिसम साक्षात्कार है । एकात ता यह है जहा आ म का विस्मरण है ।

तो यागी ! यह मुक्ति पुरुषा की ही है या स्त्रिया की भी ?

यागी को क्षण भर स्तब्ध देखकर रानी न फिर कहा स्त्री का कल्याण कहाँ है ?

'पति सवा म ।

पति कहा है ?

योगी उत्तर नहीं द सका । फिर कहा 'सर्वोच्च ज्ञान की खाज म है ।

'फिर स्त्री को भी दीक्षा देंगे यागी ?

नहा ।

'क्या ?'

अधिकारिणा नही है ।

'तो य यागी जब समाप्त हो जायेंगे तब नय यागी कहा स आयेंगे?

लोक म फस प्राणिया स जन्म मरण चलता रहगा ।

तो यह मुक्ति कुछ ही लोगो की है । बोधिसत्व न ता यागिराज ! लोक-करुणा के लिए निर्वाण भी अस्वीकार कर दिया था । स्त्री भी शक्ति है इसी स तथागत क अनुयायियो न उस लता माना है । आप जिस नीरस पथ को बता रह ह उसम सबन क शून्यवाद म क्या अन्तर है ?

उसम अभाव था यहा घनत्व है । वह नकार था, यहा दर्शन है । वहा शून्य था यहा शिव ह । वहा अनात्म था यहाँ परमात्म है । रानी ! सब तो अधिकारी नहीं हा सकत । उसके लिए इतना दुख क्यो ?

दुख ता अमर है, योगी । तुम आत्म-परमात्म दर्शन करके भी व्यक्ति

नही हो, यह मैं नहीं मान सकती। यह जो योगमार्ग का प्रचार करते फिर रहे हो, वह भी ग्रह की तृष्णा है चाहे इस ग्रह को आदिनाथ की इच्छा कह कर अपने को धोखा दे लो। तुमने साधना की है, साध्य-साधन जानते हो। पुरुष तुम्हारे बहकावे में आ सकता है, क्योंकि उसका आधार ठोस नही होता। किन्तु वह साधना कभी स्त्री की साधना नहीं है जिसमें उसका मातृत्व खण्डित हो। प्रकृति ने उसे विधाता बनाया है इसीसे वह कभी भी एकान्त में नहीं छली जाती।

मुमुक्षु!' योगी ने कहा 'आद्या को कौन नहीं जानता है, माता! कौन नहीं जानता कि शिव भी शक्ति के बिना शव है। परन्तु अपनी परमावस्था में वह शिव सबसे परे है। उसी को जानना सबसे ऊपर है। उसे स्त्री नही समझ सकती।

रानी के होठों पर व्यंग्य फिर खेल गया।

धीरे से कहा, योगी, परमशिवत्व प्राप्त करना व्यक्ति का ही काम होगा। स्त्री तो लोक की विधाता फिर भी रहेगी। और जिसका सहजरूप अधोमुख गति है उसे ऊर्ध्वगति करके कैसा ही ब्रह्मानन्द तुम प्राप्त कर लो किन्तु दुख सत्य ही रहेगा। शाश्वत!

'माया! योगी ने हँसकर कहा स्त्री इतना ही सोच सकती है।

'इतना ही सोचेगी योगी। रानी ने कहा क्योंकि इससे अधिक अधिकारी तुमने उसे माना ही नहीं। जिसका दूध पीकर बड़े हुए हो उसका मान क्या चुकाया तुमने? यदि तुम्हारी माता कामिनी न होती तो तुम्हारी माता कैसे बनती? तुम्हारा समस्त योग मार्ग एक दिन क्या निकट भविष्य में धूर्तों और व्यभिचारियों का अण्डा बन जाएगा क्योंकि जो गृहस्थधर्म से विमुख है जिसे केवल ज्ञान और साधना का दंभ है जो सहज ममता और जीवन के प्रेम को अस्वीकार करके वैयक्तिक मार्ग पकड़ेगा वह अवश्य पतित होगा।

वृद्ध ब्राह्मण मन्त्री ने कहा, सत्य है, महारानी! जो वेद का मार्ग शास्त्रों का मार्ग नहीं देखेगा वह कभी भी सफल नहीं होगा। आदिनाथ शिव भी पार्वती से समन्वित हैं।

योगी गोरखनाथ ने कहा ब्राह्मण वेद का भार ढोते हैं मन्त्री। तत्त्व

नही जानत। लोक का यह दख उन्ही न बनाया है। मनुष्य न मनुष्य को घणा सिखाया है और साधना के क्षेत्र म स्त्री क प्रवश न ही यह घार व्यभिचार फलाया है। अपने स्वाथ स ऊपर उठकर दखो। राजा भरथरी पहला त्यागी नही है। किन्तु विशुद्ध याग माग म प्रवश करन वाला पहला राजा है। कामाग्या स उज्जन और श्रीपवन तक सारा आर म केवल व्यभिचार देख रहा हूँ। एम यागिया की आवश्यकता है जो लाक क सामन आदश स्थापित कर सकें।

वद्ध ब्राह्मण न घणा स मुख फिरा लिया। रानी ने व्यग्य स फिर देखा कि तु कहा केवल योगी को भिक्षा दे दासा! नानिया और उपदेशका के लिए गहस्थ को ही कमजाल मे फसकर उपाजन करना हागा और उसक लिए रानी भी रानी हागी।

रानी हस दी। दासी काँप उठी। उस सिद्ध गारख का आलक था।

गोरख न कहा अपने पथ प्रदशक क लिए देना होगा माता। योग सर्वोच्च साधना है। दुरूह कष्टकर है। काम का दहन अत्यत कष्टकर है! तुम्हारा पुत्र साधना की एक ऊची मजिल पर पहुच गया है।

मरा पुत्र! रानी न कहा।

हा। भरथरी!

रानी अवरुद्ध सी भीतर चली गयी। यागी लौट आया।

कुछ ही दिन बाद भरथरी छ चक्र साढे आधार, दो लक्ष्य और यामपचक का जान गया। तब गोरखनाथ ने कहा वत्स! जीव के जन्म मरण का कारण क्या है? क्या वह सष्टि चक्र म पच पच कर मरता है? क्या है इसका रहस्य? केवल यही कि किसी अनादि काल म शिव और शक्ति क्रमश स्थूलता की ओर प्रस्फुटित हए थ—अलग अलग हाने के लिए।

क्या गुरुदेव? भरथरी ने पूछा।

यही शिव की सिसक्षा थी।

'उस निर्लिप्त म यह सिसक्षा क्या हुई, गुरुदेव?

क्योकि आद्या उसस एक हाकर भी अपन स्वभाव म चचला थी। और इसीलिए जिन दिन यह दोना समरस हाकर एक हा जायेंगे उसी समय

यह सारा दिखाई दने वाला चक्र अपने आप समाप्त हो जायगा। शक्ति ही कुण्डलिनी है और शिव ही सहस्रार म वतमान है। जन्म-जन्म के इकट्ठे हुए मलो के कारण कुण्डलिनी दबी पडी है। वही सष्टि है। उसके दो रूप हैं—सूक्ष्म और स्थूल। स्थूल कुण्डलिनी के जागने म मुझे सिद्धियाँ मिल गयी थीं किन्तु उससे परम पद नहीं मिलता। वह तब मिलता है जब परा-सवित ज्ञानरूपिणी वह साक्षात माहेश्वरी शक्ति—सूक्ष्म कुण्डलिनी जाग उठती है। जब उसका शिव स मिलन होता है तभी पिण्ड म ब्रह्माण्ड समा जाता है। यह न वेदपाठ स होता है न ज्ञान स न वैराग्य स। केवल गुरु-कृपा स ही मुझे यह प्राप्त हो सका।

'गुरुदेव! क्या मैं भी उसे पा सकूँगा?'

'वत्स, यत्न कर! कठिनतर माग है। परन्तु प्रयत्न करने पर क्या नहीं होता? हठयोग साधन है जो अन्त म चित्त निरोध पर पहुचता है। उसका निरोध सबसे कठिन है, क्योंकि चित्त एक प्रवाह की भाँति बदलता है। ब्रह्मचय का पालन तुझे सफलता देगा।

और मरखरा फिर अपनी साधना म लग गया। सामदई ने सुना कि अब वह योगी हो गया था तो कहा, सखी! स्वामी तो योगी हो गये, अब मेरे लिए क्या माग है?

देवी! योग माग तो वर्जित है।'

सामदई ने कहा 'कहते हैं कण्हपा सिद्ध भी नाथ मत का अनुयायी है। उसकी दो शिष्या हैं—मेखलापा और कनखलापा। उसने स्त्रियों को शिष्या क्या बनाया है?

'नहीं जानता देवी! परन्तु अभी तक तो यही सुनती आई थी कि भोग म ही योग मिलता है। यह कहता है जोगी गोरख कि भोग स ही भोग मिलता है।

'यह नहीं जानता। यदि भोग वर्जित होता तो ध्यानी बुद्धि-पारमिताएँ क्यों रहतीं?

नहीं! यह भी कहता है कि सवज्ञ तो स्त्री को छोडकर चले गये थे,

फिर यह पारमितायें कहाँ से आईं ? वह ता कहता है कि लोग अब नहीं समझते। यह सब अनधिकारियों को हटाने के लिए पूर्वजों द्वारा रहस्यमय ढंग से लिखी अध्यात्म पक्ष की बातें हैं जो अज्ञानियों ने व्यवहार-पक्ष में उतार ली हैं। क्योंकि मार्ग वही है। अब इस मार्ग में बाह्य सिद्धि तो मिल जाती है परन्तु वास्तविक मुक्ति नहीं मिलती।

रानी नहीं समझ सकी।

धूनी की उजियारी में महायोगी ने कहा : गुरुदेव ! अब समय आ रहा है।

हाँ वत्स ! अब परमगुरु के उपदेशों की परीक्षा का समय है।

दोनों का तात्पर्य था गोदावरी के उस विराट मेले से जिसमें भारत भर के ही नहीं, तिब्बत और बलूचिस्तान ईरान तक के साधु सम्प्रदाय एकत्र होते थे और वहाँ अपने अपने मत का प्रचार करते थे। वहाँ बड़े-बड़े धर्मगुरु आते थे और परस्पर शास्त्रार्थ होता था। इसी की वर्षों से प्रतीक्षा थी। उसी के लिए नेपाल से चले थे और अब वह समय समीप आ गया था। इस यात्रा में निरन्तर साधना चलती रही और गोरखनाथ का नाम भी योग मार्ग के साथ साथ फैलता गया। इस समय गोरखनाथ काफी प्रसिद्ध हो चला था।

आदिनाथ का उपदेश लोक में प्रतिष्ठित होगा।

आदेश गुरु आदेश।

तब लपटें काँपने लगीं। लगा वह ऊपर चढ़ना चाहता था। गोरखनाथ ने कहा : लो और काठ डालो।

शिष्य धूनी की आग को बढ़ाने लगे और उसका धुआँ और भी ऊपर उठने लगा, फैलने लगा।

५

चिर प्रतीक्षित गोदावरी का मेला आ गया है। वहाँ भीड़ें लग गयी हैं। कश्मीर के परे पश्चिम में ईरान और तथा बलूचिस्तान से पूर्व में तिब्बत

व कामरूप और दक्षिण में सनुतक में साधु समुदाय एकत्र हो गया है। बहुत-से राजा भी वहाँ अपने वैभव के साथ साधु दर्शन के लिए आ पधारे हैं। उनके तम्बू गड़े गये हैं और प्रतिस्पर्धा में वैभव, नारियाँ और न जाने क्या-क्या वैभव आ इकट्ठा हुआ है। पाशुपत, लकुलीश सौभाग्तिक, बौद्ध योगाचार मतानुयायी अवैदिक शैव, वज्रिकापन, अवैदिक योगि सम्प्रदाय, ब्राह्मण धर्मानुयायी भागवत वैष्णव, जैन, वाममार्गी, पारसनाथी और नेमिनाथी वज्रयानी कालचक्रयानी, शाक्त, कौल, विभिन्न आरनायों के गुह्य समाजी देवी पूजक, सौर गाणपत्य तांत्रिक मांत्रिक यांत्रिक और दक्षिणाचारी कापालिक, कालामुख इत्यादि आ आकर इकट्ठे होने लगे हैं। इतना भारी बाजार लग गया है। गांवों और आसपास के नगरों की भीड़ें आ लगी हैं। जादूगर तमाशे वाले खेल दिखाने वाले, नट और ऐसी ही मनोरंजन की सामग्री आ गयी है। धनिकों और वैभवशालियों में अपने अपने सम्प्रदाय के गुरुओं को दान देने की होड़ होने लगी है। इस भारत में जो सम्प्रदायों का वन था वह एक प्रकार में आकर वहाँ एकत्र हो गया है। कहीं वेदान्ती भाषण देते मिलते हैं कहीं षड्दर्शन के आचार्य बोलते हैं। परन्तु इन शास्त्रार्थों में मारपीट नहीं होती। न जाने असहिष्णुता के बावजूद यह सिद्धान्त भारत में कब से मान लिया गया था कि उपासना में सबको अपने मन का स्थापित करने का अधिकार है। देवताओं की भीड़ देखने योग्य है, इस कदर मूर्तियां बिकने आयी हैं—कहां पाँचों धर्मों वृद्ध हैं तो कहीं पार मिताएँ। कहीं त्रिनयन हरक है तो कहीं हेरुक युगनद्ध हैं। कुरुकुल्ला चीनतारा, एकजटा छिन्नमस्ता आदि यहां दीखती हैं तो उधर गणेश हैं एक मूर्ति में वह अपनी शक्ति की योनि पर सूण्ड लगाये हैं दूसरी में वह सम्भोगरत हैं। काली, महाकाली दशभुजा, दुर्गा सरस्वती महाश्यामा महाविद्या मातृश्वरी के पास ही कुबेर जम्भल आदि विक्र रहे हैं। शिव विष्णु की तो भरमार है। वराह, नृसिंह आदि अवतारों की मूर्तियों की कमी नहीं। हाकिनी, शाकिनी डाकिनी भी मौजूद हैं। कपड़ों पर मण्डल बने हैं। वर्णबीज मालाएँ भी हैं जिनको घरों में टाँग लेने से पाप और विपत्ति दबती है।

लगता । लेकिन इस समय एक ब्राह्मण ने उसमें प्रवेश किया है । वह जाकर नग्न हो गया है क्योंकि वहाँ सभी नग्न हैं—पुरुष भी स्त्रियाँ भी । वे जाने किस किस जाति और वर्ण के लोग हैं । ब्राह्मण भी जाकर बैठ गया है । उसे भी मदिरा मत्स्य मुद्रा (चना) आदि मिल गये हैं । एक जो शायद पुरोहित है यह भैरव बना है । उसका वस्त्र सिंदूर से चर्चित है । वहीं भैरवी है—सिंदूर रंजित नग्न नारी । वे एक दूसरे के गुप्त स्थानों की पहले पूजा करते हैं फिर भैरव शराब पीना शुरू करता है । वह एक मन्त्र पढ़कर एक प्याला चढ़ाता है सब पान है । फिर यहाँ क्रम चलता है । एक एक करके प्याले चलते हैं और स्त्री-पुरुषों की मर्यादा टूटती जाती है और वे युगनद्ध होते हैं । पता नहीं कौन किसका किससे है । भैरवी और भैरव मस्त हैं । युगनद्ध होकर महासुख लेते हैं पर फिर भी तृप्ति नहीं मिलती । तब मदिरा पीते हैं । एक-एक प्याले में वे एक एक देवता को पी जाते हैं और जब भैरव ग्यारहवाँ प्याला पीकर मदहोश सा शिवोऽहं (मैं शिव हूँ) कह-कर लेट जाता है तब भैरवी शक्ति के समान उस शव पर चढ़कर उसे शिव बनाने लगती है । चक्र से बाहर निकलकर सब वर्ण अलग अलग हो जाते हैं ।

कपालियों का विषय नीरस है । वेदानुयायी ब्राह्मण इन शूद्र और म्लेच्छ तत्वों में अभिभूत दिखाई देते हैं । कोई कोई आग पर चल रहा है कोई कीलें खा रहा है कोई लोहे की कीलों के बिस्तर पर कोई नंगा सो रहा है । कपाल वनिताएँ स्तन खोले गले में नरमुंड मालाएँ धारण करके हाथ में त्रिशूल लिये घूम रही हैं ।

बौद्ध ब्राह्मणों का मजाक उड़ाते हैं फिर कवच बाँटकर लोगों को अपनी ओर झुकाते हैं । इन कवचों के साथ मन्त्र भी है । कालचक्रयानी सिद्ध किन्पा भी आये हैं । कई मछुए और जुलाहे आदि निम्न जातियों के भी सिद्ध हैं । उनके नाना रूप हैं । दत्तात्रेय सम्प्रदाय के लोग कभी-कभी पागल से दिखाई देने में पाशुपतों की टक्कर लेते हैं । पाशुपत ने जहाँ स्त्री को देखा वहीं वह अश्लील इंगित करने लगता है । नागार्जुन के रसेश्वर सम्प्रदाय के साधु विचित्र औषधियाँ बेचते हैं और कई साधु सोना बनाने के लिए लोगों से सोना लेकर चम्पत भी होते हैं । साधुओं की रक्षा स्वयं

उनके दल चलते हैं। कहीं रक्त वर्ण, कहीं स्याही जैसे चोले चढ़ाये, कहीं जटाधारी, कहीं कनफटे और न जाने कितनी तरह के वेश गोदावरी के तीर पर आकर एकत्रित हो गये हैं। सिद्ध चुणकरनाथ ने धूना लगा दी है।

उसी भीड़ में एक व्यक्ति शान्त-सा देख रहा है। उसका नाम शान्तिपा है। वह वज्रयानी सिद्ध है। उसने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जो तिब्बत के बौद्धों तक मान्य हैं। वह विक्रमशिला का द्वाररक्षक पण्डित है और इतना प्रकाण्ड विद्वान है कि मगध का वह ब्राह्मण अब बौद्धों में कलिकाल-सर्वज्ञ के नाम से विख्यात है। वह अभी नालन्दविहार के पण्डितों से मिलकर आया है। मथुरा, पाटलिपुत्र, उद्यान, और समस्त पीठों के पण्डित आकर एक दूसरे से मिलते हैं।

वह शान्तिपा देख रहा है कि सामने से भीड़ छँट गयी है और दो स्त्रियाँ चली आ रही हैं। वह उन्हें जानता है। वे कनखलापा और मेखलापा नामक स्त्रियाँ कण्हपा सिद्ध की शिष्या हैं जो जालंधर-पंथ का अनुयायी है। जालंधर का नाथ मतानुयायी भी माना जाता है। यह दोनों स्त्रियाँ सिद्ध योगिनी हैं और बड़ी पण्डिता हैं। दूसरी ओर से भादे आ रहा है। वह श्रावस्ती का ब्राह्मण, चित्रकार था जो अचिन्तिपा की भाँति कण्हपा का शिष्य हो गया था। वह धनिरूप देश का लकड़हारा था। मस्त वह इतना था कि उसने जंगल में लकड़ी काटकर रस्सी समझकर उन्हें एक साँप से बाँध लिया था। कण्हपा भी शबरपा की भाँति छिन्नमस्ता के उपासक हैं। वह इस समय विधानगर से आये हुए हैं।

उद्दन्तपुरी, सोमपुरी, मालव, सिन्धु आदि का पर्यटन करके शान्तिपा वैयाकरण और त्रिपिटक आदि के निष्णात विद्वान हो गये। जब वे वज्रासन बोध-गया गये तो बंगाल के पालवंशी राजा महीपाल और उनके सम्बन्धी भागवत ने उन्हें विक्रमशिला के एक द्वार का पण्डित नियुक्त कर लिया था। वही शान्तिपा चिन्तामग्न-सा बढ़ा जा रहा है। बस यही सनसनी फैली हुई है, क्योंकि कल ही गोरखनाथ और कण्हपा का शास्त्रार्थ होने वाला है।

शान्तिपा की विह्वलता का कारण कुछ इस प्रकार है।

हाँ, वह योगी गोरखनाथ ही था।

अनेक वाममार्गियों ने उसे घेर रखा था, परन्तु वे प्रायः ही योग-

मार्गी थे।

गोरखनाथ ने कहा 'शिव द्वारा प्रवर्तित सारे योग मार्ग श्रेष्ठ हैं। दत्तात्रेय महान साधक थे। बौद्धों में भी जो सम्प्रदाय योग मार्गी हैं वे एक ही स्थल पर खड़े हैं।

उनके भाषण को सुनकर विभिन्न मतावलम्बियों में उत्सुकता जाग गयी थी।

एक ने कहा था परन्तु योगी फिर विभेद किसका है?

'अज्ञान का।

'स्पष्ट करो। स्पष्ट करो।

'योगि मार्ग ही सबका मूल है। अन्त वही मूल भूमि है। वाद पद्धति और उपासना वाह्याचार है। गोरखनाथ ने कहा था।

योगी योगी है न वह ब्राह्मण धर्मानुयायी है न बौद्ध ही।

योगी तो अद्वय की साधना करता है।

'सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की कामना ही भेदमूलक है। अपने अवलम्बित मार्ग की अभिवृद्धि धवल योग क्रियाओं से ही सम्बन्ध जोड़नी है।

जाति घृणा छोड़ो। कोई जन्म से ऊँच नीच नहीं होता। गोरखनाथ ने कहा था।

साधु को संचय नहीं चाहिए। मठ विहार, मन्दिर केवल आडंबर है। काया ही तीर्थ है, सहज बनो समरस की ओर बढ़ो।

और शान्तिपा ने देखा था कि असंख्य मतों के लोगों ने जयजयकार किया था।

शिव के अठारह सम्प्रदायों ने गोरखनाथ को गुरु स्वीकार किया था। गोरखनाथ ने कहा था किन्तु वामा-साधना का त्याग आवश्यक है। योगी को भीतर ही सुख प्राप्त करना है।

उसने दूर तक इस विषय को समझाया था। अन्त में बारह सम्प्रदायों ने स्वीकार किया था। छः तो गोरखनाथ को ही गुरु मान बैठे। छः ने उन्हें मार्ग दर्शक मात्र माना। वे सब नाथ मतानुयायी हुए।

यही शान्तिपा की चिन्तना है। वे वज्रयानियों का भीतरी आडम्बर

और कुत्सित व्यभिचार तथा तन्त्र मन्त्रों का जजाल देख चुके हैं और उसमें ऊब गये हैं। उन्हें कोई पवित्र मार्ग चाहिए। वे देर तक टहलते रहते हैं और फिर गोरखनाथ की धूनी की ओर बढ जाते हैं।

मेले में सम्वाद फैलता है तो हलचल मच जाती है। कलिंगाल सवन को गोरखनाथ ने शास्त्रार्थ में पराजित करके नाथ सिद्धामत कौल सम्प्रदाय में दीक्षित किया तो सब एक बार चकित रह गये।

मेखलापा कहती है 'यह कैसे हुआ?'

एक बौद्ध कहता है, 'गोरख भी ब्राह्मण है शान्तिपा भी थे। ये कायायोग के शवसाधक प्रच्छन्न ब्राह्मण है। ये दिखाने को वेद का विरोध करते है। बस इनका उद्देश्य अनात्मन के सिद्धान्त का खण्डन करके ब्रह्म की स्थापना करना है। ये अब दक्षिण शैवों का सगठन जो वामाचार के विरुद्ध उठ रहा है असल में सघ का वज्र-साधना का विरोधी है। इनमें और ब्राह्मणों मे भेद ही क्या है।'

कण्हपा कहता है 'बौद्ध और शाक्त और शैव परस्पर भेद होने पर भी एक ही लक्ष्य की ओर जाते हैं। आदिनाथ ही बुद्ध हैं। महासुख का वर्णन यद्यपि सवन ने नही किया परन्तु वे तो बोधिसत्वों के रूप में इसी का अनुभव करते है। वे ही ध्यानी बुद्ध बनते हैं। नाथ मत और बौद्ध-मत का भेद ही क्या है? परन्तु गोरख अपने गुरु का विरोध कर रहा है। मत्स्येन्द्र-नाथ को मैंने भोट देश और नेपाल में अवलोकितेश्वर की उपासना में देखा है। वे वामाचार के विरोधी नहीं हैं। फिर यह जो ब्रह्मचर्य का पाखण्ड है यह मूलत शिवशक्ति के द्वय मे ब्राह्मण धर्मियों के ब्रह्म का प्रतिपादन है जो न प्रवाह मानता है न अनात्मा का लोप। अवश्य ही गोरख ब्राह्मण-छत्री है।

कनखलापा कहता है, गुरुदेव! गोरख की एकान्त मार्गीय सिद्धि है।'

फिर वे सब हँसते हैं।

भाद्र कहता है 'नाथ मत का यह नया रूप है। गुरु मत्स्येन्द्र शैव परम्परा में चले गये थे, परन्तु उनका शिव भी बुद्ध में अद्वय था। परमगुरु

जाल धरनाथ पूव म उसी की साधना कर रहे हैं। गोरख का स्वर कहाँ स उठा ?

'वह ता गुरु मत्स्य द्र का उपदेश बताता है। अचिनिपा कहता है।

गुरु मत्स्य द्र न ब्रह्मचय को भोग म याग कहा था। किन्तु यह तो अलिप्ति का अथ ही दूसरा कर रहा है। इसके आदश से तो सब ही नष्ट हो जाना चाहिए।

वह ता अ वागही योगी तयार कर चुका है। बहुत स म्लेच्छ भी उसके अनुयायी हुए हैं।

म्लच्छ इन ब्राह्मणा स तो श्रष्ठ हैं। अचितिपा कहता है।

और इसी तरह व बातें करत रहत हैं।

बातें समाप्त नहा हाती।

गोरखनाथ आ गया है। वह एक नया स्वर उठा रहा है। उसका स्वर फल रहा है। वदान्ती कह रह हैं—चला शाकर मत की विजय है। शूद्रा का मत है परन्तु न जान कितना दुराचार इनम घुसा था जा यह शुद्ध किये द रहा है। प्रत्यभिनादशन के पण्डित कहने हैं—गोरख का शिवशक्ति-मत दशन म प्रत्यभिनादशन ही है। पद्धति भेद है तो क्या ? पातजल योग के अनुयायी कहत हैं—गोरख राजयोग को ही हठयाग स आगे मानता है क्योंकि पवन और शुक्र के सयम से भी वह्नि वह चित्त वृत्ति का निरोध मानता है जा राजयाग की ही विजय है।

और इसी तरह न जाने कितनी बातें चलती हैं ।

हवा चलती है तब साँस-सा सूब उठाती है। महालग का अधकार मे काइ दावता है।

कौन ?

मैं हूँ नाग ! तुम ?

महानग।

आह ! गुरु गारखनाथ के शिष्य हो ?

कण्हपा गुरु क शिष्य स मिल रहा हूँ ?''

फिर व मिलत हैं। कहाँ-कहाँ घूमे ? फिर पीठा, तीर्थों की बातें।

उनक विषय और है।

बातें और हैं।

आओ।' भादे कहता है।

'कहाँ ?'

'हमारा शिविर है उधर।'

'हम आकाश के नीचे रहते हैं ?'

भादे पर प्रभाव नहीं पड़ता। कहता है, 'हम तुम दोनों ही एक ही गुरु की शिष्य परम्पराओं में हैं। कल हमारे-तुम्हारे गुरुओं का शास्त्रार्थ है। परन्तु मैं विभेद का कारण नहीं समझता।

भादे चुप रहकर देखता है।

महालग कहता है, 'भेद यदि पद्धतिमात्र में है तो यह क्षम्य है। गुरुदेव ने योग मार्ग फैलाया है और देख रहे हो कि लोक में विभिन्न मतों के अनुयायी उनके पीछे एकत्र हो रहे हैं।

भादे कहता है ठीक कहते हो। आओ, इस विषय पर मनन करें।'

दोनों शिविर में प्रवेश करते हैं। मशाल जल रही है। वे आसनों की बातें करते हैं। फिर भादे कहता है कि संभोग में विभिन्न आसनों का विभिन्न फल मिलता है।

महालग कहता है 'आसन सुख से बैठना है भादे ? उसे स्त्री से सम्बद्ध न करो।

'हमारे परमगुरु ने तो स्वयं आसन का रूप बनाया है।'

'मुझे दिखाओ।

महालग देखने को उत्सुक है। भादे पहले उसका फल समझाता है महालग सिर हिलाता है।

भादे कुछ आसन करता है। महालग देखता है।

भादे कहता है, 'यही जालंधर बंध है।

भादे को गर्व है। उसके गुरु के गुरु ने स्वयं एक बंध का प्रचलन किया है।

किन्तु महालग को भी कम गर्व नहीं। वह दिखाता है एक और आसन और कहता है 'यह गोरक्ष बंध है।

भादे कहता है महाचार्य श्री लक्ष्मीकरा ने साधकों के लिए जो कहा

है वह मरे गुरु मदव कहा करत हैं।'

महालग कहता है 'मुझ अपना मत समझाओ।

भाद कहता है यम ही मूल वधी है। वन वज्रपाणि बोधिसत्व है। वही सव तथा महाधिपति है। महायक्ष वह गुह्यकाधिपति है। प्राणी वज्रधर है। जगत की स्त्रियाँ कपालवनिता अर्थात कपालिनी हैं। और साधक हेरुक भगवान की मूर्ति है जो उससे अभिन्न है। हरुक शिव का ही एक रूप है। काया म दस नाडियाँ प्रधान हैं। इनके समूह म हृदयपद्म के बीच सूक्ष्म आकाश दल है वहीं प्राणादि का आधार शिवस्वरूप कूटस्थ आत्मा स्थित है। नाडियों के उदयक्रम स पचामृत का आकर्षण किया जाता है और आकाश विचरण की सिद्धि प्राप्त होती है।

महालग कहता है पचामृत क्या हैं ?

भाद कहता है शुक्र शोणित मद मज्जा और मूल—इनका ऊर्ध्व-गति करन म शरीर वज्रोपम हो जाता है।

गुरुदेव भी वज्रोली से यही सिद्धि प्राप्त करते हैं। मैंने भी की है।

'तो फिर भेद कहाँ है ? परमतेय शिव है। शक्ति उपास्य है। उसके परे अपर शिव है। शिव और शक्ति के मिलन के बिना कुछ नहीं है।

'किन्तु परमशिव तो निर्गुण है।

नेति नेति ही है। भादे कहता है।

उपास्य क्या है ?

शक्ति।

फिर शिव स अभिन्न क्या है ?

कुछ नहीं।

तो भेद क्या है ?

भेद नहीं। मिलन ही सुख है।

'वह किस मिलन म है।

स्त्री ही शक्ति का रूप है।

स्त्री बाहर है कि भीतर ?

भीतर भी बाहर भी।

स्त्री का बाह्य रूप वासना है।

'नहीं। उसमे नित्य सुख है। भैरव की उपासना के लिए वह आवश्यक है।

उपासना क्या है ?

'चर्बी और मनुष्य का मास—इनकी आहुति देनी चाहिए। नर-कपाल में सुरा पान करना चाहिए। मनुष्य का ताजा खून महाभैरव का उपहार है। इसीलिए कपालवनिता का सदैव साथ रखना चाहिए। मदिरा ही में पशु का पाश कटता है। यही कुलमार्ग है।

महालग कहता है 'फिर दया कहा है ? नर बलि हिंसा ही है। मदिरा से बुद्धि भ्रष्ट होती है। स्त्री की भग में शुक्र अधोगति होना है। यह कुल मार्ग है परन्तु अकुलमार्ग तो इसमे भी ऊपर होना चाहिए।

भाद सोचता है। कहता है सहज है यह साधना क्योंकि तन्त्र मन्त्र ज्ञान, ध्यान यहाँ तक कि गुरु की भी आवश्यकता नहीं। मद्यपान से बहुत विभोर आनन्द होता है। उसमे भी बड़ा है स्त्री से सभोग।

'इसमे निरजन तक सत्य क्या है ?

निरजन शून्य है। वही महासुख है, सत है।

'क्या वह निषेधात्मक है ?'

नहीं विधात्मक।

उसको प्रगट करो।

वह चार प्रकार का है।'

'बताओ।'

प्रथमानन्द। फिर परमानन्द। फिर विरमानन्द।

'और क्या ?'

सर्वश्रेष्ठ है सहजानन्द। वही सुखराज है।'

उसे व्यक्त करो।

'वह स्वसवेद्य है। अनुभवमात्र से जाना जा सकता है, अस्मिता वहाँ नहीं रहती। यही अनन्त है, अनादि अनन्त।'

'क्या यही निर्वाण है ?

नहीं। न वह जन्म है न मोक्ष, न भव न निर्वाण।'

'यह भाव दृष्टि से दूर नहीं।'

'भेद व्यथ ही है महालग।
गरीर का चरम प्राप्तव्य कहाँ है ?
'गरीर म ही।
मुझे बताओ।
मेरुदण्ड ही कंकाल दण्ड है, मेरु पवत। चरणतल म मरवरूप धनुषाकृति वायु है कटि म निकाण उद्धरण। उसके तीन दला पर वत्तलाकार वरुण का निवास है और पथ्वी है हृदय म जो चतुस्र भाव म सवत्र व्याप्त है। गिरिराज है सुमरु। उसके अदर कुहर म नरात्म धानु जगत उत्पन्न होता है। इसी म पद्म है उसम बोधिचित्त क गिरन स कालाग्नि प्रवश करती है। इसी म शुक्र को ऊपर खींचना चाहिए।
पद्धति भद है, मूल भेद नहीं है। पद्म और वज्र मूल म शक्ति और शिव हैं। किन्तु क्या तुम्हारा तात्पय स्थूल लिंग और योनि म है ?
हाँ।
तो साधना स्थूल है।
यदि चित्तरत्न सम्पन्न हुआ तो।
उपभोग म तृष्णा का अन्त कहाँ है ?'
चित्त क निरोध म।
उसका सत्य ?
शून्य।
तो कहो, कामना का उपभोग साधन है।
साधन ही है।
शून्यता ही गुरु है ?
हाँ।
तो परम शिव आदिनाथ गुरु नहीं है ?
वह भी शून्य ही हैं। वही वज्रधार हैं। समस्त बुद्धों के गुरु वही हैं।
इसम शक्तिया का स्वरूप क्या है ?
मोह ईर्ष्या राग वज्र और द्वेष।
इसका मथमन ?
वायु निरोध, जो ललना रसना है उनको हो प्राणवायु का वाहन

करनेवाना समभा। पहली प्रना चन्द्र है। दूसरी सूय। बीच की नाडी अवधूती है। अवधूती के जागरण मे ही साधक मे ग्राह्य ग्राहक वजितत्व आता है। मरु के शिखर पर महासुख है। वहा एक चौंसठ दला का कमल है जो चार मृणाना पर स्थित है। वही वज्रधर पद्म का आनन्द लेता है। व चार दल हीनूय आतनूय महानूय और सवनूय है। सवनूय म ही उष्णीशकमन है वही डाकिनी जालात्मक जालधर गिरि शिखर है—वही महासुख है। वही पहुचकर योगी वज्रधर हो जाता है। वही सहजानन्द मिलता है। कायात्मक आनन्द, वाचात्मक बनकर मानमात्मक बनना है और अन्त म नानात्मक बनकर महासुख बनता है। यह चचल चित्त ब्राह्मण है और अवधूती नाडी डोम्बिनी है। तभी वह भटकता है। उसे छूकर उसी म सग करन से सुख मिलता है।'

'पद्धति भेद है।

'तुम्हारा बन्धन कहाँ है?'

बन्धन नहा भेद है।

वह क्या?

वज्रधर नूय है पर साजन है।'

'वही निरजन।

'फिर सिसक्षा कौन करता है?

कोई नही।

तो यह है कहाँ से है?

'सदैव वनमान प्रवाह है।

इसका नियन्ता?

कोई नही।

'परमशिव?'

कल्पना है वह। तम परमात्मा मानकर प्रवाह को रोकत हो?'

'होने की ही बात मे प्रवाह है। प्रवाह का रूप ही आत्मा मानते हो?

हा।

परन्तु आत्मा का मिलन किससे होता है?

तुम ब्राह्मणा की-सी बात करत हो!'

तो प्रलय म क्या हाता है ?

भाद नहा बताना। कहता है— प्रवाह है।

मैं बताता हूँ। महानाग कहता है।

'गुरु वचन कहो।

सुना। शून्य स्वय म कुछ नहा। जा कभी नही था, वह कभी हो ही नही सकता। प्रवाह का प्रारम्भ कहाँ है ?

तुम ही कहो!'

काय अव्यक्त है ता कारण है, व्यक्त है ता काय। प्रलयकाल म अद्वितीय पर शिव ही समस्त जगत के प्रपच को अपन म विलीन करत हैं और वही प्राणिया के कमफल को सूक्ष्म रूप म अपने भीतर स्थापित करके रखत हैं। सृष्टि फिर प्रारम्भ होती है।

क्या होती है ?

प्राणिया का अवशिष्ट कमफल पकना बाकी रहता है। तभी शिव म अव्यक्त भाव स स्थित रहने वाली शक्ति सृष्टि करन की इच्छा सिसृक्षा बनकर व्यक्त हा जाती है। उसका आद्य रूप हा त्रिपुरा है। वह स्वय प्रगट होती है और स्वय ही सृष्टि रचती है। वह ब्रह्म स जन्मी है या चिन्मात्र म जन्मी है तो चिद्रूपा है। ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता का वह समन्वी है तभी त्रिपुरा है। आदि कारण शिव ही है। तुम शक्ति का हा आदि मानत हो और अन्त भी। शून्य वज्रधर यद्यपि शक्ति स महासुख प्राप्त करता है पर तुम शक्ति को कारण मानत हो। कारण ता शिव है।

भाद नहा मानता। कहता है जगत प्रवाह है। उसम परमशिव क्या स्थिर है ?

यहा बौद्ध नास्तिकता है। शिव शक्ति सदाशिव और चार तत्त्व हैं। विद्या और माया भेद की अनुभूति का निराकरण और स्वीकृति हैं। शिव ही बद्ध होकर जीव है। हम पहले अन्तरग उपासना करते है तुम बहिरग।

लक्ष्य एक ही है।

पद्धति अलग है और प्राप्तव्य भी। भोग नहा कठोर सयम से निर्विकल्प आनन्द मिलता है। तुम्हारे गुरु का पथ स्थूल है अत निम्न कोटि

'हमारा मार्ग सहज है, तुम्हारा दुरूह। श्रीसुंदरी की साधना में भोग और योग एक साथ मिलते हैं। जिसमें इन्द्रियों के भोग में संशय नहीं, भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं, वही सर्वत्र समान बुद्धि है।'

'स्थूल व्याख्या न करो भादे योगी! यह सब काया के भीतर की व्याख्या है। यह सब आध्यात्मिक है। गुरुदेव कहते हैं कि परमशिव ब्रह्मचारी हैं। वही योगी को श्रेय हैं।'

भादे कहता है, 'यह भय का दर्शन है।'

'यह साधना का कठिन पथ है।'

'एकांगी है।'

'क्या?'

'स्त्री की सिद्धि क्या है?'

'स्त्री शक्ति है।'

'क्या वह आत्मवत् में अस्मिता से अलग है?'

'नहीं! सब-कुछ वही परमशिव है।'

'फिर उसका सत्य क्या है?'

'शक्ति अपनी सिसृक्षा के रूप में हो तो स्त्री रूप में रहती है।'

'तब उसे सिद्धि नहीं चाहिए?'

'वह तो आद्या है, माता है।'

भादे हँसता है। कहता है, 'कभी संभोग किया है?'

महालग चिढ़ता है। कहता है, 'पशु ही करते हैं। तभी योगी जन्म लेते हैं।'

महालग नहीं सहता। कहता है, 'जन्म पशु ही लेते हैं। साधना से योगी बनते हैं और रुद्र का साक्षात्कार करते हैं।'

'स्त्री का कर्मफल कैसे नष्ट हो सकता है?'

महालग उत्तर नहीं दे पाता। कहता है, 'मैं गुरुदेव से पूछकर बताऊँगा।'

भादे हँसता है। कहता है, 'इस गुरु से पिण्ड छुड़ा ले योगी। गुरु कण्हपा की शरण में आ। एक बार उस महासुख का भी अनुभव कर।'

एक स्त्री भीतर आती है।

उधर किसी सामन्त का स्कन्धावार टिका है। उटवद्ध जूट सैनिक वहां भोजन पका रहे हैं। दिन में वे इधर उधर घूमते हैं। रात को एकत्र होकर गीत गाते हैं। साधुओं के हाथियों की भाँति सामन्तों के भी हाथी झूमते हैं। बौद्धों के वैभव की थाह यहां भी नहीं मिलती।

पल्लव, मधव, कोंकण, कोमल, केरल, टक्क, अहीर, कीर, खस, अंग, कलिंग, गंग, जालन्धर, वत्स, यवन, गुर्जर, बर्बर, द्रविड़, गौड़, कर्नाट, वराड, लाट, नाग, वंग, मालव, पंजाब और न जाने कहां के ये सैनिक इस मन की विचित्रता बता रहे हैं। जाट बौद्धों के साथ हैं। राजपुत्र अवश्य ब्राह्मणों के साथ हैं।

वह एक सामन्त है जिसने राज्य के लिए स्वयं पिता की हत्या की थी। पानदान लिये उसकी दासी बैठी है। वह जानती है कि दिन में पान में चूना और रात में कत्था ज्यादा लगाना चाहिए। उसके स्तनों पर मालती की माला पड़ी है। सामन्त को उसके नितम्ब अत्यन्त प्रिय हैं। वह कपूर डाल कर पान लगाती है और उस पर विचित्र चित्रकारी भी करती है। शिविर चन्दन और अगरधूम से महक रहा है। कोई स्त्री वीणा बजा रही है।

लड़का उसे देखता है तो जैसे उसका हृदय कसक उठता है।

आगे बढ़ता है। वेश्याएँ इधर ठहरी हैं। वे धर्मलाभ प्राप्त करने आई हैं। साधू स्नान से ही पाप धुलते हैं। वेश्यागमन में वाममार्गियों को बहुत पुण्य मिलता है। बहुत-सी पुण्य ही लुटाती हैं। देवदासियों को देखकर वे स्पर्धा करती हैं।

लड़के को मार्ग बढ़ाता है।

ग्रामीण तरह-तरह की बातें कर रहे हैं। वे कभी योगियों के चमत्कारों की बातें करते हैं कभी कुछ। उनको किसी भी अन्धविश्वास में विश्वास है। उन्हें किसी का अहंकार है परन्तु जैसे जीवन एक परम्परा है और उसके अतिरिक्त उन्हें कोई इच्छा नहीं।

सामन्त के स्कन्धावार के पीछे कहीं की रानी ठहरी है। उसके यहां कोई स्त्री मलय तिलक दे रही है उसके आगे आरसी धरी है। श्रेष्ठ रत्नों के आभरण पहने है। उसके चरणों पर दासी कुंकुम लगा रही है। मधुर गीत-स्वर उठता आ रहा है। वह शायद बौद्ध उपासिका है।

लड़का आगे बढ़ता है।

दरिद्र और भिखमंगे पड़े हैं। फटे वस्त्र, उनमें स्त्रियाँ भी हैं। कैसा दुःख है! इनका कल्याण कहाँ है?

लड़का सिहर उठता है। और बड़बड़ा उठता है, करुणचित्त रक्षा करो।

उसका स्वर कोई नहीं सुनता।

आगे कुछ लोग बातें कर रहे हैं। एक कह रहा है, उत्तर में एक द्वीप है। कहते हैं वहाँ नित्य उत्सव होते हैं। वहाँ सब सदैव तरुण रहते हैं। वहाँ कोई बुरा आदमी नहीं। सब सज्जन निवास करते हैं। न वहाँ कोई किसी को सताता है, न वहाँ क्रोध ही है। आलस्य का वहाँ काम ही नहीं। मृत्यु और रोग का न चिन्ता है, न दीनता।

लड़का नहीं रुकता। होगा ऐसा देश पर वह तो उस पर विश्वास नहीं करता।

आगे कोई कह रहा है, सिद्ध लुईपा ने जब ऐसा तब सोचा कि क्या न इस देश को तब तुरन्त उड़ान।

अँधेरा बढ़ गया है।

इधर गोरखनाथ का स्थान है।

एकान्त में योगी बैठा है। विचार कर रहा है। धूनी जल रही है। धक्‌धक्!

नाग!

गुरुदेव!

महानाग कहाँ है?

मेरा देखने गया है, गुरुदेव!

नाग हट जाता है।

गुरु गोरखनाथ बैठ जाता है।

रात के चारों पहर आलिंगन और निद्रा में बिताकर संसार विषयों में बहा जा रहा है। गोरखनाथ हाथ उठाकर पुकारता है—रे मेरे भाइ! दुःख ही मूल है, उसे मत हाथो।

लड़का एकान्त में फिर जाता है।

गोरख गा रहा है—

मैं नाथ का सुनार हूँ। तो मुझमें रस अमृत रूप सोना लो जाओ। मैंने धमनी को धौंकनी बनाकर धौंका तब सिद्धि की। रस की यही जमना है। गगन का महारस मिल गया।

लड़का बैठ गया है।

गोरख फिर गा रहा है।

हे जानकार ज्योतिषी! देखो और विचारो कि पहले पुरुष हुआ कि स्त्री? न वहां वायु है न बादल थे न वहां बिना खम्भे का मण्डप रचा लेकिन उसकी उत्पत्ति करनेवाली तो वह नारी ही थी? जब बाप नहीं था तब भी वहीं बैठी थी। यह माता (माया) बाल-कुंवारी है। इसने अपने स्वामी को पालने में लिटाया और वहीं हिंडोला झुलाने वाली हुई। माया कहती है कि ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर—ये तीनों मेरे पूत किये हुए हैं और मैं ही इन तीनों की पत्नी भी हूँ। मेरे दोनों हाथों में माया है। दो पिगला, मेरी खाटलड़ी है और जीव रजाई है। पृथ्वी पत्थर और पानी मेरा पटोला है। वह भी मेरी सौत के लिए छोटी है। आवागमन में जनम बीत गया, फिर भी चावल का सबरा-मारा न गया। मछिन्द्रनाथ के प्रसाद से गोरख जती कहता है कि इस तत्त्व का विचार कर दिया।

लड़का देख रहा है। निधूम अग्नि के सामने कैसा बालक-सा बैठा है। निस्तरंग। शांत। उसमें जैसे विकार ही नहीं। मन में हूक-सी उठती है।

अन्धकार में वह पीठ हट जाता है।

कोई पास आता है।

'महारानी!'

लड़का रो रहा है।

'महारानी!'

वृद्ध ब्राह्मण मन्त्री कहता है 'क्या हुआ?'

लड़का तो नामर्द है।

श्माह है पति वाजन।

नारी की अपार तृष्णा। अनन्त आकाश एक नारी का कपोल है, जिस

पर वियाग के ग्रमग्य ग्रश्रुग्रा व रूप म नक्षत्र भिलमिला रह हैं। गादावरी भी वदना की एक धारा है। वसन्त—मानी की भी वसक गन्धमय पुष्प व जन्म स पहल फूटन ग्रकुर की वेला की वसक। विदग्ध मानस का फूत्कार है यह पवन। न जान कितनी रातें बीत गयी हैं।

वदवाह्य ब्राह्मण मन्त्री कहता है— योगी! यह गहस्थ माग नहीं समझेगा दवी! इसस राजा नहा मिलगा लौटकर।

लडके ने उष्णीष उतार दिया है। जूडा दीख रहा है। पुरुष वश पर व केश सहसा ही उस विचित्र बना दत हैं।

पगडी बाँध लें दवी! यह उज्जयिनी की मयादा का प्रश्न है। उज्जयिनी की ग्रसूयपश्या महारानी इस प्रकार ग्रवगुण्ठनहीन खडी रह! ब्राह्मण! राजकुल की यह दशा! हे कलियुग! तरी ग्रपार महिमा है। इसी पवित्र भरत भूमि म जहाँ ऋषियों के नाद उठत थ वहाँ य शूद्र ग्रौर ग्रत्यज एसा विद्रोह कर रह हैं। दवी! शकराचाय के पूव पीठ स जगदगुरु ग्राए हैं। मैं उनके दशन कर ग्राया हूँ। व राजा क लिए सन्यास के विरुद्ध हैं क्योंकि उसस वण धम विनष्ट हाता है।

जानता हूँ मन्त्री! कि तु व भी तो पुरुष ही ह! वेदान्ती भी क्या स्त्री स घृणा नहा करत? मैं तो बोधिसत्त्व की उपासिका थी। ग्रब मरा काई उपास्य नहा रहा। मरा जीवन ग्रन्धकारमय है। पुरुष-पुरुष एक है बौद्ध हो या वदबाह्य या जन या योगी या वेदान्ती या साख्य! नारी क लिए कहा भी स्थान नहा है। सब माता क उपासक हैं पर तु विधाता न युवती का भी हृदय दिया है उतना ही तो पवित्र! प्रकृति न जो काया दी है वह क्या पाप है? उसका ग्रपना क्या धम नहा है? नारी क्या बन माता? मैं विद्रोह करती हूँ। नारी पुरुषहीन रहगी।

ग्राप उत्तजित हैं दवी! वद्ध मन्त्री कहता है ग्राप वद की मयादा का निर्णय। र का माग लाक म धम की स्थापना है। यदि उसी वण धम क ग्रनुसार नीर चलता तो यह ग्रनगाचार नहा हाती। यह भिक्षु सघ, यह योगि-सघ – यह सब गाहस्थ्य धम पर पतन हैं। खिलान वाला को ही यह गाली दत हैं माता को ही बुरा कहत हैं। पूवकाल म वानप्रस्थ होन पर ही लोग ससार का छोडत थे ग्रौर छोड ही जात थ। सुना म मिनिया बीन कर

खात थ। महादेवी ! एक दिन आएगा जब फिर लोक म धम की स्थापना होगी। उसे कोई आज तक नही मिटा सका और मिटा भी नही सकेगा।

सामदई कहती है वद्ध है अमात्य ! विश्राम करें। मैं आती हू।

कहा जायेंगी दवी ?'

कण्हपा के पास।

क्या, देवी ?'

मैं दखूगी कि वह मुझे बचा सकता है या नही ?

वह बचायगा ? वज्रयानी ! नास्तिक !

हा, अमात्य ! कल उसका इस गोरख स शास्त्राथ है। म उसे आश्वासन दूगी कि बौद्धसध का उज्जयिनी उपहार दगी यदि वह सचमुच ही इस योगी को हरा दगा। योगी की पराजय म मैं जीतूगा मन्त्री ! भल ही स्वामी न मिलें किन्तु वह सिद्धान्त तो खण्डित हो जायगा ? मुझ कुछ भी हो बौद्ध तान्त्रिक, य वाममार्गी इन योगियो से भले लगन हैं। आखिर कही तो स्त्री है उनक पथ म। भले ही मनु के पथ की भाँति नारी उनम पूज्य नही, फिर भी शक्ति तो कहत हैं उसे वे !'

किन्तु देवी ! वह व्यभिचार है। स्त्री को व क्या सम्मान दत है !'

पुरुष की साधना ही मूखता है मन्त्री। तुम सद गहस्थ हो। तुम्हार माता थी, पुत्री है पत्नी है। तुम उनका सम्मान समझ सकते हो। यह कहा समझन है ? अप्राकृतिक अहकार का पोषण करन के लिए यह सारा आडम्बर बनाते हैं। किसलिए ! मनुष्य की अपार शक्ति का जाग्रत करन क लिए ? किन्तु नारी उसम त्याज्य है ? मैं नही जानती मन्त्री ! परन्तु या तो यह भूल है सब या विधाता न यदि हमे केवल साधन ही बनाया ह तो हृदय दकर भूल की है। शान का कटार दभ जो जीवन की ममता को निरस्कृत कर देता है वह कैसे मुझे सत्य हो सकेगा मन्त्री ? करुणा ! कहाँ है करुणा ? सबक ही झूठे थ !

स्त्री फिर रो उठती है। मन्त्री ने आँखें पोछी हैं।

फिर प्रकृतिस्थ होकर कहती है, आप जायें। मैं आती हूँ।

मैं चलू ?'

'नहा, परन्तु दूर न रह मुझसे।'

जो आता।

स्त्री चलती है। मन्त्री देखता है।

अब कण्हपा का स्थान पास आ गया है। वक्षा की ओर बन जाता है मन्त्री ओर म। लड़का पहुचता है। मशाल के प्रकाश म सिद्ध कण्हपा दखता है। प्रभावशाली मुख। गोरख म आयु म अधिक। पास ग्या है डमरु। सिंघाड़े के स वेग। दाढ़ी मछ साफ। देह का रग काला। यही है वह प्रसिद्ध कृष्णाचाय जिनके ग्रन्था की बौद्धा म धूम है। शव जिम अपना कहत है सहजयानी भी तात्रिक भी। जिनके नाम स ब्राह्मण चिन्त हैं जन चिन्त हैं। लम्ब कान, दीघबाहु। मुख सौम्य।

घुटना तक की धानी। सामने लटकते कटिब ध के दोना छोर। हाथ म है मास। सामन रखी है मदिरा। चला! इस समय महामुद्रा नही है।

लड़का प्रणाम करता है।

तथागत की शरण जाता हूँ। हे परम सिद्ध! प्रणाम करता हूँ।

कण्हपा ध्यान म है। आशीष दता है फिर नाम नहीं लखता। ऐस बहुत आत हैं। किस किस पर ध्यान द? उसके चमत्कार देखकर लाग काप उठत है।

परन्तु लड़का बठ जाता है। कण्हपा का ध्यान उस पर जाता है। लड़का कुछ निर्भीक है माना वह उस सिद्धत्व स प्रभावित नहा है।

पर लड़का चुप है।

सिद्ध कण्हपा सहमा गुनगुनान लगता है—

सब जगु काअ-वाअ मण मिलि
विफुरइ तहिमा दूरे।
सो एहु मग महासुह
णिव्वाण एक्कु र।

एवकु ण किज्जइ मन्त ण तन्त।
णिअ घरणी लइ केलि करन्त।

णिग्र घर घरणी जाव ण मज्जइ ।
ताव कि पच वण्ण विहरिज्जइ ।[1]

लडका सुनता है और उसम एक सिहरन-सी दौड जाती है । सिद्ध अपने को भूल गया है । लडका तुलना करता है । गोरख ! यह क्या भद नही है ! यह भी सिद्ध है वह भी सिद्ध है । दोनो ही योगी हैं । यह क्या कहता है ? अपनी घरवाली के साथ केलि करो ! और वह ? घरवाली को छोड दो ! पर तु चमत्कार और जादू दिखाने मे कण्हपा का नाम कम नही । गोरख अकेला ही तो नही । चमत्कार यह सभी दिखाते हैं ।

लडका हिलता है ।

सिद्ध तन्मय है ।

लडका सोचता है क्या करूँ ?

खाँसता है ।

सिद्ध के नयन खुलते है । देखकर भी जसे नही देखता । क्षण भर लडका दब-सा जाता है । फिर न जाने कसे एक शक्ति सी जाग उठती है उसमे । साहस लौट आता है और वह सीधी दृष्टि मिलाता है ।

'आचाय !'

'क्या है बालक !'

'मेरा एक काय है ।'

'तेरा ?'

हाँ मेरा ही । कर सकेंगे ?

'बालक, कण्हपा को लोभ नही है ।'

अपने लिए न सही । सबके कै दास्ता व मघ के लिए भी नहीं है ?'

कण्हपा सोचता है । निर्भीक है बालक । पूछता है 'किन्तु बालक तू जानता है किमसे बातें कर रहा है ?'

'कृष्णाचाय से । सिद्ध कण्हपा से । इंद्रियजित् सिद्ध से । जिसके हृदय मे लोक के लिए करुणा है वसी जसी कि बोधिसत्व मे था ।'

---

1 महासुख निर्वाण एक ही है—काय वचन-मन का एकीकरण ही । एक भी तन्त्र मन्त्र मत करो । अपनी घरनी—घरवाली को लेकर केलि करो । जो अपनी घरनी से नहीं रमता वह पचवण का विहार ही क्या ?

बालक की चतुरता से कण्हपा प्रसन्न होता है। कहता है, 'संघ को तू क्या देगा, बालक! संघ को तो देने वाले बहुत हैं। तू परिव्रज्या ले ले आगे चलकर। संघ का कल्याण होगा।'

'ले लूँगा, सिद्धराज! मेरा काम हो जाये तो! मैं संघ को अपार धन भी दूँगा।'

'लोभ न दे बालक। माँग, क्या माँगता है?'

'केवल शास्त्रार्थ में योगी गोरखनाथ के सिद्धान्तों का खण्डन! ऐसा खण्डन कि उसे आपका शिष्यत्व ग्रहण करना पड़े।'

लड़के के नशे में एक प्रतिहिंसा है।

'वह तो होगा ही। पर तुझे इससे क्या मिलेगा?'

'सद्धर्म की विजय!'

'साधु बालक! किन्तु मैं तो स्वयं नाथ मतानुयायी हूँ।'

'फिर शास्त्रार्थ क्यों?'

'क्योंकि वह सिद्धान्त को विकृत कर रहा है।'

'यही मैं कहता हूँ।'

'परन्तु तेरा क्या स्वार्थ है?'

हठात पगड़ी छूटती है।

मामन्दई का सौंदर्य देखकर कण्हपा की आँखें झुक जाती हैं।

'महामुद्रा!'

'नहीं। महारानी मामदई। उज्जयिनी की भट्टारिका। महाराज भर्तृहरि की धर्मपत्नी। सिंहल की कुमारी। मेरे पति को इसी ने ब्रह्मचर्य और योग में डालकर मेरा जीवन अंधकार में डाल दिया है। मैं आपका पथ प्रदर्शन चाहती हूँ। आपके पथ में युक्ति है और स्त्री का भी स्थान है।'

'महामुद्रा!'

'परन्तु आप तो घरनी की बहुत बातें न ? गाते थे?'

सिद्ध हँसता है। बहुत सरल हँसी जैसे बहुत नादान सामने आ गया हो। कहता है, 'वह घरनी तो मेरी अवधूती है, जो मेरे भीतर है। उसे न ब्राह्मण छूने से डरता है, क्योंकि वह तो डोम्बिनी है न ? डोम्बिनी का रमण फलद है उपासिके! मैं उसी को जगाता हूँ। उसी में सचरण करता हूँ।

उसके बिना शुत्र, मज्जा, मद, शोणित इत्यादि पर काबू करना व्यर्थ है।'

'तो वह धरनी नहीं ?'

'योगी की वास्तविक धरनी तो भीतर है।'

रानी अवाक् है।

'तो महामुद्रा ?'

'पुरुष का साधन है।'

'और पुरुष स्त्री का क्या है ?'

'वह भी साधन है, रानी। तू मखलापा और कनखलापा से दीक्षा ले।'

'वह सब भी योगिनी हैं ?'

'हा ! स्त्री शक्ति है पारमिता है।'

रानी उठ खड़ी हुई है। मन खट्टा हो गया है। कहती है 'योगी सब एक-से ही हैं। परन्तु मेरा काम ?'

'वह तो कभी भी होगा ही।'

रानी चल पड़ी है। अब पगडी नहीं बांधी है।

अंधकार।

सनसना रहा है पवन।

दम लिया दानो का।

हठात् अंधकार में किसी ने रानी का हाथ पकड लिया है। कठोर हाथ।

'मरखी ! मरखी !!'

'कानामुख है कोई !'

'नर बलि देने वाला !'

रानी की एक चीख फट पड़ती है।

वृद्ध मन्त्री दौडता है।

खड्ग उठता है।

फिर त्रिशूल पर झनझनाता है।

रानी दौड़कर हट जाती है।

'कौन !' का भारी स्वर उठता है।

पास आया है एक व्यक्ति।

योगी गोरखनाथ।

राक्षा उठे हुए हाथ।

कालामुख गाली देता है।

रक्तपान बच जाता है।

अंधकार में योगी गोरख कहता है कालामुख! नर बलि चाहते हो। तुम्हारा देवता प्यासा है? हत्या में कौन सी सिद्धि है!'

तू नहीं समझेगा गोरख! तू नहीं समझेगा।

कालामुख चला जाता है।

वृद्ध मन्त्री छद्मवेश में है। गोरख नहीं पहचानता। कहता है जाओ वीर! यह साधू नहीं हिंस्र पशु है। जब तक नाथ नहीं जागेगा तब तक ये ऐसी ही भयानक क्रियाएँ करेंगे। यह नहीं समझते कि नरक्तपान और मदिरा पान का क्या अर्थ है। पूर्व योगियों ने जिसे आध्यात्मिक सूक्ष्म अर्थों में जगत से वैराग्य के लिए इन शब्दों में कहा है उसे इन्होंने ज्यों का त्यों ले लिया है।

ब्राह्मण मन्त्री के होठों पर व्यंग्य खुलता है। कहता है योगी! ब्राह्मण सो गया है इसलिए कलि विभिन्न साधू वेशों में खेल रहा है।

योगी देखता है।

वह व्यक्ति चला गया है।

योगी के मुख से शब्द फूट निकलते हैं ब्राह्मण! दंभ! ज्ञानहीन अहंकार!

अंधकार में रानी और मन्त्री चले जाते हैं। रानी एक वृक्ष के नीचे बैठकर फूट फूटकर रोने लगती है।

वृद्ध का स्वर विगलित है। कहता है भट्टारिके! इन धमनियों में जब तक रक्त है तब तक वह उज्जयिनी के राजकुल के लिए प्रवाहित होगा। रोयें नहीं! देवी जागें। आप ही जगद्धात्री हैं। वैदेही ने क्या कम दुख भोगे थे!

किन्तु अमात्य, उसका राम तो साथ था न?

नहीं महारानी! एक दिन राम ने भी अग्नि-परीक्षा ली थी!

अग्नि परीक्षा! राक्षसों में पातिव्रत जीवित रखने वाली तपस्विनी

की परीक्षा। तभी तो वह पृथ्वी म समा गयी।

नया ग्रावेश ग्राता है। ग्राता है ग्रौर चला जाता है। वह फिर रो पड़ती है।

'कौन रोता है वहा ?' एक वृद्ध स्वर। लगता है, कोई दाक्षिणात्य का निवासी है। बहुत टूटी फूटी भाषा म पूछता है।

कोई पास ग्राता है।

ग्रमात्य देखता है।

वृद्ध कहता है 'क्या रुलाते हो ? वह तो लक्ष्मी है।'

स्त्री देखती है।

'कहाँ के योगी हो ?'

योगी ? भक्ति ही योग है पुत्री !

'दक्षिणात्य हो ?

हाँ, ग्रालवारो का शिष्य हूँ। वैष्णव। योग तो भक्ति से ही मन मे जागता है।

तो क्या तुम नारी म घृणा नही करते ? रानी पूछती है।

'क्या करूँगा घृणा पुत्री ! नारायण के पास ही तो लक्ष्मी है। सीता भी तो नारी थी। नर ग्रौर नारी सब ब्रह्म स्वरूप है। परमात्मा के सामने सब ही भक्ति के ग्रधिकारी हैं।

तो क्या तुम वैराग्य नही मानते ?

विषय-सुखो म मन को भुलाना पाप है वही माया है। ग्रन्यथा नारायण की स्मृति करते हुए लोक धर्म म लगना तो पाप नहीं।

रानी खड़ी हो जाती है।

नारायण ! !

फिर उत्तर के भागवतो का यह स्वर ग्राज तक क्यो नहीं सुनाई दिया ? यह दक्षिण म कैसा स्वर उठ रहा है !

'तुम्हारे साथ कोई ग्रौर है ?'

केवल दो यात्री हैं।'

इस ग्रपार भीड म कैसे रहोगे !

कहाँ जाग्रोगे यात्री ?'

'पुत्री ! हम तीर्थ-यात्री हैं। सुना था, यहाँ साधु सत्संग होगा। साधु दर्शन करने आये हैं।

'क्यि ?

नयन धन्य हुए।

किन्तु यह तो भक्ति नही जानते।

सब अपने अपने मार्ग पर चलते हैं, पुत्री ! नारायण ही सब जानते हैं। हम तुच्छ मनुष्य क्या जानें ?

तुम वेदान्त नही मानते ?

क्या नहा मानते पुत्री ? सब-कुछ नारायण है। सब कुछ वही है। माया भी है। परन्तु माया भी उसी की है। सब कुछ उसी का है।

रानी नया सुर सुनती है।

वृद्ध कहता है याथा आलवार हैं अब भी ?

अब नही है। वे भक्त श्रेष्ठ थे। उनके अनुयायी हम हैं।[1]

अब कहा जाओगे ?

तीर्थ-यात्रा पर।

रानी झुककर वृद्ध के चरण छूती है। अन्धकार में वृद्ध अमात्य कहता है वैष्णव ! ब्राह्मण विरोध तुम्हारे मत में है ?

नारायण ! नारायण ! ब्राह्मण और वेद की निन्दा सुनना भी पाप है।

वृद्ध पूछता है कौन जाति हो ?

'अब संन्यासी हैं जाति नहीं रही। पहले थी तब सुनार था। ब्राह्मण परम पूज्य हैं शास्त्र कहते हैं।

अमात्य कहता है तुम्हारा मंगल हो संन्यासी ! तुम्हारा मत विजयी हो। चलो भट्टारिके !

वे चले जाते हैं। रानी कहती है अमात्य ! वह शूद्र था फिर भी सबसे श्रेष्ठ था !

---

१ आलवार ८वीं शती में हुए। यह कथा ९ वीं शती की है जब दक्षिण में कम्ब रामायण लिखी गयी थी। २०० वर्ष बाद वैष्णव स्वर उत्तर की ओर चला। गाहड़वाल कृष्णोपासक थे। रामानन्द के समय यह मत उत्तर में भक्ति बनकर छा गया।

अमात्य कहता है, दवी। यही ब्राह्मण कृत मर्यादा है। इसी को
लोग न भुला दिया है। एक दिन बुद्ध न वद की नि दा की थी। किन्तु
इसीलिए कि तब हिंसा और कमकाण्ड क लोभी ब्राह्मणा ने अति कर दी
थी।[1] उस अहिंसा का माग पकडकर बुद्धावतार क रूप म विष्णु न रोका
था। परन्तु बुद्ध न अनाचार और व्यभिचार नही किया। क्षमा हो दवी।
बौद्धा न ही इस व्यभिचार को बढाया है और यह अवदिक याग मार्गी और
शव। भयानक। घोर पातक। घोर कलिकाल।

व दूर निकल जात हैं। फिर रात्रि की निस्त धता छा जाती है। अब
भी नक्षत्र टिमटिमा रह हैं। और गोरखनाथ की धूनी अभी भी जल रही
है जस गीता म लिखा है—जिस निशा म सब सो जात हैं उसम भी सयमी
जागता रहता है। और कण्हपा जाग रहा है वह शूयशिखर पर पहुच
रहा है। कनखलापा मखलापा अचितिपा भाल्पा और विरूपा सो रहे
हैं। महालग व्याकुल है। वह अभी गोरख से कह चुका है और गारख कहता
है 'वत्स। कल अवश्य मुझस कण्हपा यही प्रश्न करेगा और मैं उस उत्तर
दूगा। तब तक क लिए अजपा जाप कर।

अब वह सोऽहं (वह मैं हूँ) करता साँसा क साथ जप कर रहा है
और रात बीती जा रही है।

ईसा की दसवी सदी। इतिहास का एक छोटा-सा पन्ना
अधकार।

और लग अब धूनी क पास लेट रहा है।

'गुरुदेव।

वत्स।

चरण दबाऊँ?'

नहीं वत्स।

या रात बात रही है बीतत भी नही बीत रही है।

और गोरखनाथ का स्वर गूज उठता है—

---

[1] श्रीमद्भागवत का विचार। इस युग से पहले ही लिखी गयी थी। दक्षिण में।

न ब्रह्मा विष्णु रुद्रौ न सुरपति सुरा
नव पथ्वा न चाण
नवाग्निवापिवायुन न गगनतल
ना दिशा नवकाल
नो वदा नव यना न च रविनाग्निनो
नो विधि नविकल्प
स्वज्याति मत्यमेक जपति तव
पद मच्चिदानन्द मूर्ते ।[१]

गादावरी की कलरव और भी मधुर सुनाइ द रही है। महालग का मोऽग्रह अब अहम (मैं वह हूँ) बनकर उनट गया है।

मनुष्य की साधना। अपार है यह यात्रा लम्बी जाने कब प्रारम्भ हुई कब अन्त पायगी याेगी कहता है सब कुछ योगिराट ही है जीव भी ब्राह्म भी ।

एक और प्रयोग।

अन्धकार म अग्नि शिखा लगती है जस स्वयभ् लिंग ह। ज्योतिलिंग है। और समस्त धूनी की काष्ट शक्ति है योनिस्वरूपा ।

इस समय सब सो गये है। धधारी पर टिका सो गया है गोरखनाथ और मन्नालग को नाद न भुला दिया है। उसका सा ह और अन्त म का श्वास सष्टि के पवन म मिल गया है हो गया है वह अबोध ।

गादावरी के प्रशस्त प्रवाह पर काल वह रहा ह और गादावरी काल पर वही जा रही है ।

सब कुछ बह रहा है योगी की निद्रा म जागरण सा ।

धूनी की लपट का उजाला उठ रहा है। एक स्त्री। बहुत ही सुदर। युवता। गोरी। मदिरा पिय है। मद स अग उसके विह्वल हो गय ह।

वही तो ह जा महालग को मिली थी। महामुद्रा।

आकर खडी मुस्करा रही है। उस दूर स दख रही है सामन्दै। और भी पीछे हटकर खडा है वद्ध मन्त्री।

---

१ वह सच्चिदानन्द मूर्ति ब्रह्मा वि ण आदि सबस परे है उसकी जय हो!

लौटते समय सुना था सामदइ और अमात्य ने। नागिका अपनी महा मुद्रा से कह रहा था, 'महालग लौट गया, महामुद्रे! यह ठीक नहीं हुआ।

महामुद्रा ने चुनौती के स्वर में कहा था 'क्या चिन्ता करते हो! मैं स्वयं गोरख का ही चिन्तन करूँगी।

भाण्डा ने कहा था, 'असम्भव नहीं है, महामुद्रे। उस मन में लायगी तो कल्याण होगा।

और सामदइ और अमात्य ठिठक गये थे।

रानी ने कहा, अमात्य! परीक्षा होगी।'

हम क्या?

कल तक प्रतीक्षा नहीं करनी होगी हमें।

अमात्य ने कहा, किन्तु देवी! वह मन क्या कुलनारी के लिए देखने योग्य होगा?

अमात्य! पतन तो मन का विकार है। एक बार गोरख झुके, उसके उपरान्त हम रुकने की आवश्यकता नहीं, जाकर उसकी पराजय की घोषणा करनी रहेगी। चिन्ता न करें। कुल गौरव अक्षाम्य रहेगा।

इसीलिए जब महामुद्रा चली तब इन्होंने पीछा किया।

महामुद्रा की प्रतिस्पर्धा दर्शनीय है।

अमात्य कहता है देवी! मैं उधर हटता हूँ। वृद्ध हूँ। मेरा धर्म इसको न देख सकेगा आपके सम्मुख!

अमात्य! दर्शन का कारण मन का विकार है। मैं तो स्तन में ही भीड़ें एकत्र कर दूँगा।

अमात्य कहता है, यह ठीक है।'

और युवती बढ़ती है।

नाद की डोरियाँ रेशम की हैं। बड़ी मुलायम। इस समय वह हो जाती है नम कभी। भोर के पहले शिथिल जब रात भर नींद की मस्ती तन को और भी मदहोश कर देती है। ऐसा है यह निबलता का क्षण। शीतल वायु चल रहा है। महामुद्रा के स्तनों के चन्दन की गन्ध अब योगी गोरख के पास मंडराने लगी है। महामुद्रा उसका कन्धा पकड़कर हिलाती है। गोरख जागता है। पास बहुत पास आ गयी है वह।

गोरख मानता नहीं। घबराता नहीं। कहता है 'माता!'

माता!

विभोर होता है महामुद्रा का मन! कहती है मूर्ख! आया है। त्रिपुरेश्वरी!

त्रिपुर सुन्दरी! माता!!

उन नयनों में सी उठ आई है समस्त धूनी। गोरख महामुद्रा को लगता है—गगन शिखर पर एक बालक बैठा है।

सामने ई सिर झुका लेती है।

महालग जानता है। महामुद्रा गुरु के पास बैठी है! कितनी वासना से दग्ध रही है! वह कौंप उठता है। परन्तु गुरु! निष्काम! महालग सोचता है। क्या गुरु में काम नहीं? इतनी साधना कर पाता है मनुष्य? फिर कोई क्रोध और घबराहट भी नहीं। कहता सुनाई देता है, माता। बैठो! गोरख का गीत सुनो।

महामुद्रा के नयनों में चिनगारियाँ सी निकलने लगती हैं। खड़ी हो जाती है। महालग बैठ जाता है।

गोरख कहता है माता नहीं सुनती मत्स्येन्द्र। तू सुनेगा?

आज्ञा गुरु!

गोरख गाता है।

नाथ निरंजन आरती साजाने हैं! झाँझ बज रहा है। नहीं। वह तो गुरु के शब्द हैं। गगन में अनाहत नाद का गर्जन हो रहा है। परम ज्योति वहाँ स्वयं विराजमान है। अखण्ड निराधार की है वह दीपमालि! वह परम ज्योति दिन रात जागती है। उसी से सकल भवन उजियाला हो रहा है। उस निरंजनत्व के अतिरिक्त मुझे और कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसकी कितनी अनन्त कलाएँ हैं! उनका पार कौन पा सकता है? वहाँ शंख मृदंग और बाँसुरी की ध्वनि उठ रही है। माता रूप मान से मैं इस कलश रूप देह को पूर्ण वन्दना कर चलाता हूँ। सुरति निरति के फूल अर्पित करता हूँ। वह मूर्ति अमूर्त है। निज तत्त्व ही उसका नाम है। वहीं सब देवताओं में श्रेष्ठ है। देखो मैं आदिनाथ का नाती मछिंद्र का पूत गोरख अवधूत आरती कर रहा हूँ।

'किसकी आरती ! यह तो तारे है। क्या यह भी उसी भवन की दीप शिखाएँ हैं ? क्या गोरख का मत वहा तक जा रहा है ! सष्टि म उस तल्लीन सगीत सुनायी दे रहा है।'

अमात्य देखता है—महामुद्रा चली गयी है। महालग देखता है—जाते समय वह अपमानित-सी विक्षुब्ध थी। उसकी आर बडी थी तब सिहनी-सी थी, इस समय जैसे वह सिमट गयी थी। क्या इसी प्रकार परम शिव म आद्या भी सिमट जाती है, जब व शव बने रहते हैं ? सामने यह कौन है ! इसको विकार नही है। सामदर्ई देखनी है।

महारानी !' अमात्य कहता है।

चलिए अमात्य ! गोरख सचमुच योगी है। कहते हैं स्त्री स्त्री पर मोहित नही होती। किन्तु महामुद्रा का यह अनिद्य सौदय, यह फूलो से लदे मौलसिरी वक्ष जसा महकता भरता बरसता यौवन, आकाश के इन्द्र-धनुप जैसा कमनीय लास इसे देखकर तो मैं स्त्री होकर भी चमत्कृत हो गयी थी। कहते है, साक्षात आदिनाथ शिव को जब विष्णु ने अपना मोहिनीरूप दिखाया था तब वे भी अचेत हो गये थे। किन्तु यह गोरख !

'आश्चय न करें देवी अमात्य कहता है, गुरुदेव को रम्भा भी नही डिगा पायी थी।'

हठात रानी कहती है अमात्य ! स्त्री सचमुच दीन है। पुरुप को पराजित करने का बोध रखने का यह कैसा जाल है ? क्यो वह अपने को लता बनाये रखती है इस वक्ष की !'

चलिए देवी ! आप उत्तेजित हैं। यदि मेरी पुत्री यह कहती तो मैं उसे भी बताता कि स्त्री मूलत माता है और तभी वह पुरुप के बिना अपूर्णता अनुभव करती है।

रानी का मन घुटने लगता है।

अब शायद आकाश म शुक्रोदय को देर नही रही है

जागरण व्याप्त होने लगा है।

आकाश म शीत पवन फेरे लगा रहा है और तब पक्षी चुहचुह करते जागते हैं। पहले कलरव मे नीद को भगाया, दूसरे म जीवन का प्यार किया। बडी सुदर है यह सृष्टि। गोदावरी सारी रात तो साँपिन थी **और**

की पहली किरन आते ही पलटकर सफेद सफेद पेट दिखा रही है।

असख्य लोग गोदावरी म स्नान कर रहे हैं। एक मनुष्य है परन्तु उसके हज़ार मस्तिष्क हैं। सबके अलग अलग दृष्टिकोण हैं। एक ही सत्य को वे कितन रूपो म दखत है। परन्तु एक दूसरे का व बोलन दत हैं, एक दूसरे को पराजित करत है तक से खडग स नही खडग दाशनिक का आयुध नही राजा का है राजा तो साधारण व्यक्ति है कर्मों का फल इस जन्म में भोगने म अधिक भौतिक सुख पाता है, उसके सत्कम भी माया की। अधिकता ही पाते है यहा सब यह मानते हैं इसको सब स्वीकार करत हैं ।

गोदावरी की धारा इन असख्य प्राणियो को देख रही है। कौन जानता है उसे? कितन पुरान पुराने समयो के मारके की याद आ रही है, कौन जानता है? वह जो स्वय बही जा रही है वह किसी की क्या याद करेगा ?

भीडें जुड रही है। अपन महारानी वेश मे सामन्देई उपस्थित है। गोरख बकुल वक्ष के नीचे हैं। आज शास्त्राथ है। विरूपा, अचितिया मेखलापा, कनखलापा चुणकरनाथ घोडाचूली धोबीपा लग, महालग और सामन्त असख्य शाक्त, तात्रिक बौद्ध वाममार्गी योगी शैव एकत्र हैं। वदिक शव भी कौतूहल मे आय है। पडदशनवादी हैं वेदान्ती है। भूत प्रता के उपासक, यक्षिणीसाधक अरे वहा तो असख्य लोग हैं।

उस भीड म हहर व्याप जाती है। आगे बढ रहा है कण्हपा और चमत्कार! वह धरती से उठ जाता है।[1] जय जय !

जय सिद्ध कण्हपा !

गोरख मुस्कराता है। हाथ उठाता है।

कण्पा धरती पर आ जाता है ।

भीड चिल्लाती है जय जय !

जय गोरख जय महायोगी !

सामदेई देखती है

दखना है वद्ध अमात्य कनखलापा गोरख प्रशान्त है। कण्हपा कुछ

---

[1] योगी को धरती से उठते मैंने देखा है।

विक्षुब्ध ।

गोरख कहता है 'सिद्धराज को प्रणाम करता हूं। सिद्धि तो निम्न स्तर की प्राप्ति है। लोक के मंगल और आत्मदर्शन के लिए हम तत्त्व विचार करें।

अब शास्त्रार्थ प्रारम्भ होता है।

लोग समझते भी हैं, बहुत से नहीं समझते परन्तु आज निर्णय का दिन है। कहते हैं जगद्गुरु शंकराचार्य ने ऐसे ही मंडनमिश्र से शास्त्रार्थ किया था।

तर्क उठ रहे हैं, कट रहे हैं।

सामदई गम्भीर खड़ी है। वह देखना चाहती है कौन जीतता है? वह चाहती है गोरख हार जाए गोरख पर न जाने क्या यह विचार उसे अच्छा नहीं लगता यह कैसी विचित्र दुविधा है क्या चाहती है? कौन जीते फिर? भीड़ निस्तब्ध है कैसा अनुशासन है गोदावरी नदी की धारा सुन रही है कण्हपा कहता है—

ब्राह्मण धर्म की बात मैं त्याज्य कहता हूं। ब्रह्म और शिव यदि एक है तो आप वर्णधर्म को स्वीकार करते हैं।

ब्रह्म निरपेक्ष है अवधूत! ईश्वर को इस रूप में मत लो। माया जड़ नहीं स्वयंशक्ति है। आद्या है। चित्स्वरूपिणी है। गोरख का उत्तर गूंजता है।

अब गोरख पिण्ड में ब्रह्माण्ड की बात समझा रहा है। सामदई को आनन्द नहीं। केवल देख रही है। इन लोगों को भी माता ने जन्म दिया होगा। अपनी छाती पर इन्हें भी उसने सुलाया होगा। यह टुनमुन भी तब रोये होंगे और इन्हें उसने हाथों पर झुला झुलाकर बहलाया होगा। उसे क्या पता था कि यह लोग वनों से भी निर्जन हो जाएँगे समुद्र जैसे खलभल करेंगे और अग्नि की भाँति इस देह सहित ही धधक उठने का प्रयत्न करेंगे! क्या इनका आत्म ही मनुष्य का सत्य है? ब्रह्म या वज्रधर! यह सब क्या है? उसके पीछे यह विचित्र जीवन क्यों बिताते हैं? धरती से उठ जाने को। मनुष्य में इतनी शक्ति है! फिर भी गोरख तो कहता है कि मनुष्य का सत्य और भी ऊपर है, यह सिद्धि तो निम्न स्तर

सामन्त सोचती है। यह सिद्धि क्या है ? गोरख कहता है ब्रह्मचर्य ! यह शब्द तो बार बार उसके मुख मे निकल रहा है। ऐसा बोल रहा है जैसे उसकी बात ही अंतिम सत्य है। उधर कण्हपा स्त्री की नकिन बना रहा है। यह ब्रह्म की बात करता है वह कहता है कि ब्रह्म नहीं है। यह आत्मा की बात करता है वह कहता है आत्मा नहीं है। फिर भी दोनो ही सिद्धिया प्राप्त कर चुके हैं! तो योग क्या है ? सिद्धि क्या है ? विभिन्न मार्गों पर चलकर भी अन्त लक्ष्य क्या है ? सत्य क्या है ? पर अब यह कैसा चक्कर है ? ब्रह्म शून्य हो गया शून्य हो ब्रह्म बन गया आत्मा अनात्म-सी बन गयी और अनात्म आत्मा-सा लगने लगा। देवता एक दूसरे के पर्याय से लगने लगे। यह क्या है ? सब कुछ देह म समा गया देह म ही ब्रह्म-माया बज्रपद्म अब फिर भी संघर्ष ।

कण्हपा कहता है 'योगी गोरख ! उसी के लिए स्त्री है। महामुद्रा !

गोरख कहता है नहीं सिद्ध ! स्त्री मे सम्भोग वासना है पतन है।

भोग स मोक्ष मिलता है। भोग स ही कौन को योग और भोग प्राप्त होते है और एक साथ मुक्ति होती है ।

तुम आध्यात्मिक विषय का स्थूल अर्थ कर रहे हो। जब अवधूती को भीतर जगाते हो तो शक्ति को भी भीतर ही क्या नही स्वीकार करते ?

वह दमन और घुटन का पथ है योगी।

सिद्ध ! वह सहज है।

प्रमाण कौन है ? तुम ?

मैं बालक अनभिज्ञ हूँ। प्रमाण हैं परमगुरु मत्स्येन्द्र।

कण्हपा हसता है विद्रूप का हास्य भीड चौंकती है ।

हमत है सिद्ध !

हाँ योगी !

कारण ?

कारण यही कि तत्त्व ही लुट गया। श्रम व्यर्थ गया। प्रमाण ही कच्चा है।'

गोरख सहसा विचलित होता है—

सिद्ध !!'

'हा योगी ! धैर्य धारण करो हृदय को कडा कर लो ।

गोरख नही समझता ।

'हा योगी।' कण्हपा कहता है, 'तुमने गुरु का उपदेश नही समझा। तुम ब्राह्मणो के बहकावे म आ गय। यह वैष्णवो का छद्म है ब्रह्मचय, जो कल तुम्हें वेदाचार की ओर ले जायगा। गुरु, अपन गुरु को देखो। गुरु मत्स्येन्द्र मेरे गुरु जालन्धरनाथ के गुरु-भाई हैं। वे दोनो भी एक ही गुरु क शिष्य थे। नाथ-मत का ही मैं प्रचार करता हूँ। नाथ मत यही है जो मैं बताता हू, क्योकि मैं ना का थ करता हू—अनादि रूप को स्थापित ।

गोरख कहता है, 'नही, सिद्ध ! यह है ना अर्थात, नाथ ब्रह्म मोक्ष दान म दक्ष है वह, उसका ज्ञान कराना, और थ है अज्ञान की शक्ति का स्थगित करना तुम गुरु मत्स्येन्द्र का गलत समझ रह हो ।

हसता है कण्हपा और कहता है, योगी ! तुम्हारा गुरु स्त्री देश म योगिनी कौलधम म आ गया है और उसने वामाशक्ति को स्वीकार किया है। स्त्री देश की रानी से उसन विवाह किया है और सुन्दरियो के बीच वह भोग और योग साध रहा है ।'

अँधेरा !

गोरख को लगता है आखा के नीचे अँधेरा छा गया है ।

कौन ?

गुरुदेव !

गुरुदेव मत्स्येन्द्र !

मत्स्येन्द्र ही ।

आदिनाथ ही ।

नही ।

नही ।

परन्तु साधु योगी और अवधूत ठठाकर हँस रह हैं। भयानक व्यग्य है। निमम है वह हास्य कनखलापा के चमकते दाँत मखलापा क कपोलो पर हास्य मव हा हा हा हा हा हा हा हा !

महालग और लग का मुख काला पड गया है गोरख स्तब्ध खडा है ।

'नाथो ! कण्हपा का स्वर गूजता ह,—'हठधर्मी का त्याग करो और इस गुप्क पथ को त्यागो। स्त्री देश जाकर देखो, अन्यथा यदि तुम्हारा सिद्धात ही सत्पथ ह तो दखें—गुरु को दीक्षित करो ।

हा हा हा हा !

गुरु को दीक्षा !

उलटी गगा !

फिर भी शील म विभ्रम ह गोरख है हतप्रभ ।

विरूपा उत्कर कहता है—सिद्ध कण्हपा की ?

परतु लोग जय बोल नही पाते। हठात रानी सामदेई चिल्लाती है 'ठहरो अवधूत !'

सब चकित ! विरूपा अप्रतिम ! कण्हपा पहचानता है।

रानी !!

हाँ सिद्ध ! रानी कहती है अभी स तुम्हारे शिष्य तुम्हारी जय कस बात सकते है ? अभी तुम विजयी कहा हुए हो ? अभी गोरखनाथ की पराजय कहाँ हुइ ? यह तो गुरु मत्स्यद्र पर आक्षेप था। व्यक्ति का उत्थान भी होता है पतन भी। कौन जान शिष्य ठीक है और गुरु गिर चुका है। मत्स्यद्र का पतन गोरख की हार नहीं है। गोरख का मन पतित हुआ है या नहा यह देखो। हो सकता है गोरख ही गुरु म ऊचा हो साधना म अभी म तुम जय का अहकार क्या करत हो ?

वद्ध अमात्य है भौंचक ! सिद्ध कण्हपा स्तब्ध ! और गोरखनाथ रानी क चरणो म प्रणाम करके कहता है 'माता ! तरा पति मेरा शिष्य है। तू साक्षात माता पार्वती है तभी तूने वह रत्न दिया और अब मुझ मार्ग दिखाया है। आशिष दे माता ! गोरख बालक स्त्री-देश जाकर गुरु को सत्पथ पर लौटा ला सके ।

सामदई बोलती नही। आखो क आँसू पोछ लती है ।

कौन जानता है कि उस समय एकत्र समस्त मानवो-पण्डितो, ज्ञानियो दार्शनिको, तपस्वियो सिद्धो योगियो म वही सबस बडा धर्म दिखा रही है ?

परतु स्त्री है न वह इतिहास भूल जाता है ।

'महालग !

'शांतिपा अब शांतिनाथ है।

'आदेश !'

महालग ! गुरुदेव विक्रमशिला होकर ही चलेंगे या उत्तर पथ से ही चले जाएँगे ?'

'हिमालय के पाददेश में सिंहल के परे कदलीवन कदलीवन में पूर्व में कामरूप-कामाख्या उत्तर में भोट देश और मूलस्थान (भूटान)। इसके बीच में स्त्रीराज्य मैं पूछना हूं गुरुदेव से ।'

और गोरखनाथ शिष्यों सहित चल पड़ा है कितनी बड़ी बाजी साथ है यदि जीता तो योगमार्ग की जय, वाममार्ग का नाश यदि हारा तो गया सब गया ।

गुरुदेव !

और गोरख गा रहा है—

'अक्षय पद धय के स्तम्भ और धुन की डोरी के सहारे शून्य में समाया हुआ है—वही निरालंब आसन है वही गोरख का दरबार लगता है ।'

गोदावरी का मेला उजड़ गया है चले गये हैं सामन्त, गुरुलोग, चेले, स्त्रियाँ, वेश्या ग्रामीण दूकानदार ।

गोदावरी बह रही है घाट पर सन्नाटा है किन्तु अब भी मेले की गन्दगी बाकी है। जहाँ यह आदमी रहता है, वहीं धरती को गँदला करता है लेकिन जहाँ गोरख टिका था वहां क्या है केवल भस्म धूनी का धुआं आकाश में भी अब नहीं दिखता, केवल भस्म है जो हवा से उड़ने लगती है ।

६

असंख्य कोसों को पार करके, नदियां वनों, जनपदों और पर्वतों को लाँघने के स्त्री-देश आ पहुंचे हैं। कामरूप की सीमा पर। यही है कामरूप।

कहते हैं जब सती के मर जाने पर शिव व्याकुल होकर उसे उठाये उठाये ब्रह्माण्ड में घूम रहे थे तब विष्णु ने दयाभाव से उन्हें शवभार से मुक्त करने को सती के टुकडे टुकडे करके उन्हें काट दिया। उस समय सती अर्थात शक्ति के शरीर के टुकडे जहा जहाँ गिरे वही वही एक एक पीठस्थान बना। उद्यान से श्रीपर्वत तक दक्षिण में और पश्चिम से पूर्व तक देवी के शाक्त पीठों का ताना बाना बुन गया था। इसी कामरूप में आकर देवी का भगप्रदेश गिरा था अत यही सर्वश्रेष्ठ तान्त्रिक पीठ बना। स्त्री देश में भी कामरूप की भाँति घर घर योगिनी कौल मत फैला हुआ है। यहाँ वाममार्गी हैं जिनके अनेक सम्प्रदाय हैं। वे क्रम कहलाते हैं। महाराजक्रम नीलक्रम महानीलक्रम गन्धर्वक्रम और न जाने वे कितने हैं। उनमें अधिक भेद नही। किसी में प्रात उठकर पहले योनिदर्शन करना होता है फिर दधि खाना होता है किसी में दन्त प्रक्षालन के उपरान्त स्त्री के गुह्यप्रदेश का एक रोम लेकर अपनी पगडी में लगाना होता है। प्राचीन मातृकाओं की यहा मुक्त उपासना है। पार्वत्य देवी देवता भैरव और देवी के बौद्ध और अन्य रूप वैष्णवी शाम्भवी और कौल मुद्राओं में यहाँ पूज्य है। हाकिनी डाकिनी इत्यादि की पूजा तो है ही यक्ष पद्धति राक्षस-पद्धति भूत पिशाच-पद्धति भी प्रचलित है। यहा कभी अन्त्यज स्त्री पुत्री कन्या रजस्वला पतित-स्तनी विरूपा मुक्तकेशी वामार्ता—किसी भी प्रकार की स्त्री की निन्दा नही होती क्योंकि वही शक्ति का स्वरूप है।

हाट है बाजार है शासन है पुरुष उसका नियन्ता है परन्तु बसे शामिका स्त्री है घर में स्त्री ही पूजा है वही सम्पत्ति की स्वामिनी है और यह देश न जाने कब से ऐसा है। पश्चिम के पार्वत्य प्रदेश (जौनसार बावर) में बहुपति प्रथा है। परन्तु यहा विवाह होने पर भी साधना क्षेत्र में स्त्री-पुरुष में परस्पर बन्धन नहा है। तन्त्र इतने प्रचलित हैं कि इस भूमि के विषय में दूर दूर तक विख्यात है कि यहा स्त्रिया जादूगरनी होती हैं जो पुरुषों को भेडा बनाकर बाँध लेती हैं। यहाँ न देशकाल का नियम है, न भक्ष्याभक्ष्य का। शौच के नियम नहीं हैं यहा, न मन्त्रो पर निर्भर रहना पडता है। दिन हो या रात या रात्रिशेष या साझ कभी भी मास खाकर मदिरा पीकर स्त्री से सम्भोग करते हुए मन्त्र का जप किया जा सकता है।

यह महानीलक्रम वाला नागरिक है। इसके हाथ में खडग ह, सदा वेन खुले रखता ह विजयाघूर्णित लाचन यह सदा मास मदिरा का उल्लासी, सिंदूर का तिलक लगाता है और रात को घूमता है, जब यह शक्ति पूजा करता है। मुण्डमाला और शवासन इसे उतना ही प्रिय है जितना योनि-चुम्बन। वेश्यारति म बडा कुशल है। पान सदा चबाता ह।

यह महालीनक्रम वाला है। मानस स्नान तथा मानस शौच ही करता है। तपण भी मानस ही करता है। दाँत भी धोता है तो मानस रूप से। इसके लिए सब काल शुभ है अशुभ का प्रश्न ही नहीं। सभा मे बैठकर गद्य-पद्यमयी वाणी बोलता है। कभी न नहाकर सदा भाजन करके देवी-पूजा करता ह। माम मत्स्य, दधि क्षौद्र रस आसव और पान खाकर! इसके लिए न जप है, न नियम। बाला म तन डाले रहता है। यह यानि का लिहन करके ही उसका चिन्तन भी करता है।

दिव्यश्रीनक्रम वाला छिन्नमस्ता का उपासक है। त्रिपुण्ड में श्मशान भस्म का बिन्दु लगाता है। शक्ति के मुख मे मुख देकर सबकाल जप करता है।

और गोरखनाथ देख रहा है—राघवक्रम भैरवक्रम कमलाक्रम, धूम्रक्रम, ध्यान मत्र गूज रहे हैं त्रिपुर भैरवी चैतन्य भैरवी भुवनेश्वर भैरवी, कमलेश्वर भैरवी सम्प्रदा भैरवी कौलेश भैरवी, षटकूटा भैरवी नित्या भैरवी रुद्रभैरवी, कुरुकुल्ला पारमिता धूमावती, बगलामुखी मातगी मातगी।

कोई ध्यान कर रहा है—

शव पर वह बैठी है लाहित हैं उसके वस्त्र, लाल हैं अलकार, षोडशी है, युवती, पीन और उन्नत हैं उसके पयोधर, कपाल कर्त्रिका हस्ता परज्योति स्वरूपिणीम्!

ज्योति स्वरूपिणी!

'गुरुदेव। लग रहा है।

गोरख देखता है।

उस ओर ही धूनी?

ठीक है।'

सहसा ही अनेक नय रक्षक आते हैं।
वे इन्हे घेर लेते हैं।
'कौन हो तुम ?
योगी !
'कौन मार्ग !'
'ब्रह्मचारी।
'तुम नगर म नहीं रह सकते।
'योगी की तो सारी पृथ्वी है।
'होगी।'
'हमे अपने राजा के पास ले चलो।
'राजा मत्स्येन्द्रनाथ उनसे नहीं मिलते जो पशुभाव के साधक हैं। महारानी विमला के वधव्य ने जब इन्हे अत्यन्त कष्ट दिया तब यह योगिराज इधर आ निकले थे। उस समय मन की शान्ति देने आये थे योगिराज। परन्तु महारानी के अपूर्व पाण्डित्य ने योगी का हृदय जीत लिया। वे भी धर्म म दीक्षित हुए और उन्होने महारानी से विवाह कर लिया। वे निरन्तर साधना मे तल्लीन रहते हैं।
लग कहता है 'उनसे कहो कि उनसे मिलने उनके ।
गोरख इंगित मे रोककर कहता है तो निरंतर वे साधना किसकी करते हैं?'
पहले वे ललिता भरवी अम्बा पार्वती के उपासक थे। किन्तु वे भ्रमित हो गये। शक्ति का रूप भूलकर वे शिवोपासना म लग गये ।
गोरखनाथ को विस्मय होता है। यहाँ यह लोग भी यह बातें करते हैं ठीक ही कहा गया है तब तो कामरूप म घर घर म योगिनीकौल मत है ।
और अब ?
'अब वे शक्ति के वास्तविक रूप की उपासना करते हैं दिव्य भावक्रम म ।
गोरख का सिर झुक जाता है।
तीनों लौट जाते हैं।

नगर के बाहर एकात वन है, सघन। पास म ही एक मढैया-सी बनी है। उसके आग एक वडा घना पेड है। वहा पत्थर के दो पतले खम्भे-स गडे हैं। वे ज्यादा स-ज्यादा डेढ फुट ऊँचे होंगे और दोना हैं चार अँगुल दूर एक-दूसरे स, और ऊपर आकर ऐसे खुल गये हैं जरा जैस कमल का किनारे वाला दल खुलता है। उस जगह आदमी की गदन टिकाइ जा सकती है। वह नरबलि देन का स्थान है।

गुरुदेव ! यही ?

'नही। पहला काम नरबलि रोकना नही। पहला काम गुरुदेव को मुक्त करना है।'

क्या यह सम्भव हो सकेगा गुरुदव !'

आदिनाथ रक्षा करेंगे, महालग ! गुरदेव भी मनुष्य ही थ। जिस माया ने ब्रह्मा विष्णु और स्वय शिव को छल डाला, उसने यदि गुरुदेव को ही पाप शात हो ! पाप शान्त हो। गुरु निदा ! इसी मुख से !'

यह गुर निदा नही गुरुदेव ! ममता की वेदना है।'

योगी म वेदना ! ममता ! वत्स !! दसरा पाप !!'

'नही गुरदेव ! अपनी ममता नही, लोक के सरक्षण की, करणा है दया ह ।

धूनी रमती है। काठ सुलगती है, धुआँ उठता है—पतला, फिर घना, फिर ऊपर तक फिर फैलता हुआ। पहल लकडी पर सफेद सा धुआँ चिपट-कर भागता है उस जगह एक हरी नीली-सी चमक दाखती है और फिर वह पीली-सी छोरा पर लाल-लाल-सी लपलपाने लगती है ।

रात बेचैनी म बीतती है ।

'गुरुन्द !'

वत्स !'

आज इतनी व्याकुलता ?'

'साचत हो, योगी का धय कहा गया ? सब कुछ छाडा था तब व्यथा हुई पर एक लक्ष्य सामन था। किन्तु अब ? आदिनाथ का माग नष्ट हो जायेगा ? ससार से धम उठ जायगा ? एकान्त वन मे तप और योग से लोक का क्या कल्याण होगा ? इतनी उन्नति किसलिए, वत्स ? लोक के लिए।

नगर के बाहर एकात वन है, सघन। पास मे ही एक मढैया-सी बनी है। उसके आगे एक बडा घना पेड है। वहा पत्थर के दा पतले खम्भे-से गडे हैं। वे ज्यादा स-ज्यादा डेढ फुट ऊँचे होंगे और दोना हैं चार अँगुल दूर एक-दूसरे स, और ऊपर आकर ऐसे खुल गय हैं जरा जैसे कमल का किनारे वाला दल खुलता है। उस जगह आदमी की गदन टिकाई जा सकती है। वह नरबलि देन का स्थान है।

'गुरुदव ! यही ?

'नहीं। पहला काम नरबलि रोकना नहीं। पहला काम गुरुदेव को मुक्त करना है।'

'क्या यह सम्भव हो सकेगा, गुरुदव !

आदिनाथ रक्षा करेंगे महालग ! गुरुदेव भी मनुष्य ही थ। जिस माया न ब्रह्मा, विष्णु और स्वय शिव को छल डाला उसने यदि गुरुदेव को ही पाप शान्त हो ! पाप शान्त हो। गुरु निन्दा ! इसी मुख स !

'यह गुरु निन्दा नहीं, गुरुदेव ! ममता की वेदना है।

'योगी म वेदना ! ममता ! वत्स !! दूसरा पाप !!'

'नहीं गुरुदव ! अपनी ममता नहीं, लोक के सरक्षण की, करुणा है दया है ।

धूनी रमती है। काठ सुलगती है, धुआँ उठता है—पतला, फिर घना, फिर ऊपर तक, फिर फैलता हुआ। पहल लकडी पर सफेद सा धुआ चिपटकर भागता है, उस जगह एक हरी नीली-सी चमक दीखती है और फिर वह पीली-सी छोरा पर लाल-लाल-सी लपलपाने लगती है ।

रात बेचनी मे बीतती है ।

'गुरुदेव !'

'वत्स !'

आज इतनी व्याकुलता ?

'सोचते हो, योगी का धर्म कहाँ गया ? सब कुछ छोडा था तब व्यथा हुई पर एक लक्ष्य सामने था। किन्तु अब ? आदिनाथ का मार्ग नष्ट हो जायेगा ? ससार मे धम उठ जायगा ? एकान्त वन म तप और योग स लोक का क्या कल्याण होगा ? इतनी उन्नति किसलिए, वत्स ? लोक के लिए।

धम का प्रचार किसलिए ? लोक म धम की स्थापना के लिए । यही तो गुरु की आज्ञा थी । अयथा एका त म हमे क्या अभाव था ? कुछ नहा । पूणब्रह्म का अहर्निश साक्षात्कार था । किन्तु जीव बद्ध है । उसकी मुक्ति करनी थी न ? बिना गुरु के तो पथ्वी पर प्रलय छा जायेगा । सोचता हूँ । गहस्थ माया के लिए व्याकुल रहता है । माया ! बडी विकराल है वह वरस । उसने गुरु का ही बाध लिया और मुझ भी व्यथित कर दिया ! महालग ! इस माया को काटना होगा । बीजस्वरूपिणी ! तून यह क्या किया !

महालग भी उदास हो जाता है ।

दिन पर दिन बीतत जा रह हैं ।

गोरख प्रासाद म नहा पहुच पा रहा है । वहा द्वार रक्षक हैं प्रहरी हैं । स नद्ध । योगी से उह घणा है । वे इस माग को पाप समझते हैं । वे शक्ति के उपासक ह और अय मार्गों को अनुचित कहत हैं ।

महालग ! क्या हुआ ?

गुरुदव ! माग नही है ।

एक बार यदि गुरुदव के दशन होते ?

वे भूल गय हैं सब गुरुदेव ! परमगुरु सब भूल गय हैं ।

कहीं वे माया तो नहा दिखा रह महालग ? कहीं वे अपने शिष्यो की परीक्षा तो नहा ले रह ?

महालग उस गुरु भक्ति को दखकर श्रद्धा मे सिर झुकाकर सोचता है—इस गोरख को अपनी महानता का इतना भी भान नही कि यह कभी भी उसका अहकार दिखाता हो ।

और उधर प्रासाद म मत्स्ये द्र की साधना निरतर चल रही है । सु दरिया की भीड म वे विभोर रहत हैं । वे सब शक्ति हैं । रानी स्वय महामुद्रा है भरवी है । नग्न सु दरिया वहा कल्लोलिनी नदी जसी बहती है । अगरुधूम महकता है । स्फटिक के दीपा मे शिखाएँ सुगधित तल म जलती हैं । राजा मत्स्ये द्र का याय प्रसिद्ध है परन्तु उनकी साधना और भी अधिक प्रसिद्ध है । रत्नपटा पर जब प्रतिच्छाया गिरती है तब अद्धनग्न सु दरियो का विभोर नत्य होता है । रशनाओ के रणन से प्रासाद मुखरित रहता है । मत्स्ये द्र स्वय भरव हैं स्वय वज्रधार हैं । शिव और बुद्ध वे स्वय हैं ।

नीलमणियो-सी पुतलियो वाली रानी विमला अपने पीनोन्नत स्तनो को उनके वक्ष पर दबा देती है। वे कहते हैं—'महारानी ! त्रिपुर सुन्दरी !'

विमला अपने को भूल जाती है। सुवर्ण और मोतियो की मालाओ मे दन्तच्छद ढक जाते हैं। मत्स्येन्द्र का भव्य गौर शरीर रेशमी दुकूलो के नीचे ऊर्जस्वित सा स्फुरित होने लगता है।

और मुख हैं दो पुत्र—मीनराम परसराम। सुन्दर ! तरुणाई के द्वार पर आ गये हैं हिरनो के जोड़े से सुन्दर। देखकर ही नयन तृप्त होते हैं। पिता ने पुत्रो को सब विषयो का ही उपदेश दिया है। सृष्टि प्रलय का रहस्य बताया है, सिद्धियो का ज्ञान कराया है। अभी स्वयं उन्होंने साधना प्रारम्भ नही की है। अब वे भी मत्स्येन्द्र की भाँति कानो मे रत्नजटित स्वर्ण कुण्डल धारण करेंगे, जिन पर आँखें नही ठहरेंगी। कुल-पूजन वे बता चुके हैं। सिद्धपंक्ति योगिनीपंक्ति, चक्रध्यान इत्यादि और योगिनी संचार और रहस्य सिद्धो की पूजा—पुत्रो को इतना ज्ञान वे दे चुके हैं। गोरे गोरे लडके देखकर महारानी विमला की आँखें हर्ष से चमकती हैं। अब भी मत्स्येन्द्र सहज के उपासक हैं। वे बाह्याचार का विरोध करते हैं। पंचपवित्र का प्रयोग वशीकरण और कुरुक्षेत्र तथा पीठो का ध्यान उन्हे निरन्तर रहता है। विमला रानी भी है सखी भी। जीवन कितना मधुर है ! दूध जैसा स्वच्छ दही जैसा स्निग्ध, मदिरा जैसा मादक मांस जैसा स्वादिष्ट मैथुन जैसा सहजानन्द इस योगिनी कौल मार्ग मे ही तो है। शक्ति ही जब सृष्टि कर रही है तो वे क्यो निवृत्त की ओर चले गये थे ! कुल मे रहकर ही शिव को आनन्द है। अकुल श्रेष्ठ है अवश्य परन्तु साधना के पथ मे तो अकुल शव है। यदि शक्ति नही है तो वह ही कहा है ? और ब्रह्मचर्य की ओर वे गये थे तब ! क्या ? कुल और अकुल का अद्वय करने ? कौलमार्ग भी तो अकुल साधन का ही मार्ग है ? ब्रह्मचर्य मे दमन है। भोग विना योग कहा है ?

राजा मत्स्येन्द्र प्रासाद मे इस समय मदिरा पिये सो गये है। रानी विमला बाहर सखियो के साथ उपवन मे आयी है।

द्वार पर कोई पुकारता है—'अलख निरंजन !'

रानी साश्चर्य बाहर आती है। दण्डधर साश्चर

'भिक्षा दो, माता !' गोरख कहता है।

कौन हो तुम ? स्वर कठोर है।

रानी को शंका होती है। मत्स्येन्द्र भी पहले योगी थे। इसी रूप में आये थे। इस रूप के योगी यहाँ नहीं आये ! यह क्या आया है ? क्या कहीं यह वही तो नहीं ? गोरख ! जिसके विषय में स्वामी कहा करते हैं ?

पूछती है 'योगी ! कौन हो तुम ?'

अवधूत !

निवास !'

'सारी पृथ्वी।

मार्ग।

गुरु का उपदेश।

'कौन है तुम्हारा गुरु ?

आदिनाथ !

'आदिनाथ ! शिव !'

'हाँ, माता।

भिक्षा दो इसे !

दासी भिक्षा लाती है।

'यह नहीं माता।'

'तो ?

मेरी याचना और ही थी।

'योगी भी याचना करते हैं ? सन्तोष ही धर्म है योगी।

माता ! धर्म के लिए अपने लिए नहीं।

क्या चाहते हो ?

दोगी माता ?

पहले बताओ।

अदेय ! माता को तो कुछ भी अदेय नहीं।

रानी चौंकती है। कहती है, 'जो प्राप्त हुआ है वही लेकर चले जाओ योगी।

माता ! इतने से धर्म की भूख नहीं मिटेगी।

तो !'

मुझे चाहिए ।'

रानी हठात् कठोर स्वर में कहती है, 'प्रहरी ! यह योगी नहीं । यह धूर्त है । इसे नगर से निर्वासित कर दो । सावधान ! सम्वाद भी न फैले ।

रानी चली जाती है ।

गोरख को प्रहरी घेरकर कहते हैं 'चलो, योगी ।'

रानी वातायन से देखती है ।

चला जा रहा है योगी । निर्वासित ! फिर भी निर्भीक ! जैसे मृत्यु से भी नहीं डरता ।

कौन था यह !

क्या चाहता था !

सुन लेना चाहिए था !!

नहीं नहीं ।

यह ?

यह वही है ।

ब्रह्मचारी ।

कठोर, शुष्क नीरस स्त्रीहीन शक्ति से हीन ब्राह्मण जैसा दम्भी !

वह उसे ले जाने आया है ।

नहीं ले जाने दूंगी ।

रानी हँसती है ।

वीणा की झंकार से प्रकोष्ठ प्रतिध्वनित होने लगता है । होठों पर रंग फैलता है, दासी चरणों पर अलता लगाती है, दूसरी स्तनों पर पत्रक रचती है ।

और रानी लावण्य से लचकने लगती है ।

कुंकुम पर चन्दन के बिन्दु मस्तक पर दिखने लगते हैं, कस्तूरी के हल्के रंग में श्याम से बिजली-सी ।

रूप और यौवन की झिलमिल में आँखें चौंधियाने लगती हैं । केसर की महक गमकने लगती है । काया की तृष्णा जागी है, वही जो आकाश से

समुद्र तक उच्छ्वसित हो उठती है। यही है सृष्टि की सिसृक्षा का केन्द्र ! नारी। माया का साक्षात प्रतिरूप ! कामाख्या गुह्यपीठ है। यहाँ मूल धर्म है। कौल धर्म में शक्ति ही तो सब कुछ है।

रानी जब मत्स्येन्द्र के सामने जाती है मत्स्येन्द्र के नयनों को लगता है कि नील आकाश के सामने पृथ्वी में से वह्नि-ज्वाल फूटकर ऊपर का रही है—ज्योति स्वरूपिणी हृदयस्थित पद्म स्फुरित होता है और वे रानी को आलिंगन में बाँधकर पुकार उठते हैं शक्ति ?

रानी विभोर होकर उच्छ्वसित सी उनके अधरों पर अधर रखकर कहती है स्वामी !

'और धधका दो महालंग ! धूनी और धधका दो। गोरख का स्वर आज विचलित हो रहा है। महालंग उद्विग्न है।

गुरुदेव ! लंग आकर कहता है।

क्या है लंग !

गुरुदेव, कोई मार्ग नहीं है।

मार्ग नहीं है लंग ! आदिनाथ की ही यह माया है न ? तो इस मैं माया हो से काटूँगा। काँटे से काँटा निकलता है न ?

'गुरुदेव ! *दोनों अवाक् हैं।*

हाँ वत्स ! क्षुरिका निकालो !'

क्षुरिका गुरुदेव !

हाँ वत्स ! महादेव ने एक दिन विष पिया था न ? पीना ही होगा।'

उस्तरा लेकर गोरख कहता है— योगीवेश !

और दाढ़ी गिर जाती है मूँछें भी।

कितना मधुर और स्निग्ध निकला है मुख योगी का। कितना सुन्दर ! दोनों अवाक् देखते हैं।

वत्स ! रेशमी वस्त्र हाट से ले आओ।

जब लंग लौटता है तब गोरख अपने को नागरिक बनाता है। महालंग की आँखों में आँसू आ जाते हैं।

'रो नहीं महालंग ! धर्म के लिए सब-कुछ करना होगा। आज या तो

गोरख अपने गुरु को लेकर लौटेगा या नहीं लौटेगा।'

'गुरुदेव!' लग चरणों पर लोट जाता है।

'हम क्या करेंगे, गुरुदेव?' महालग पुकार उठता है।

धूनी न बुझने देना, वत्स! गोरख रहे या न रहे।

'रानी प्राण हर लेगी, गुरुदेव! वह बाघिन है।'

'मैंने बाघिन के दांत तोड़े हैं महालग! भीतर की बाघिन उस से भी बड़ी है।'

'परन्तु सहजानन्द प्राप्त साक्षात परमशिव की निर्विकल्प समाधि प्राप्त करने के उपरान्त कैसी प्रतिहिंसा योगीराज! यह तो लोक है जहां लोग कर्मानुसार फल भोगते हैं। उन्हें भोगने दीजिए, गुरुदेव! अपनी समाधि क्या भंग की जाय!

वत्स! समाधि! आत्म सुख अन्तिम सुख है परन्तु किसलिए? बद्ध प्राणी को छुड़ाने के लिए। योगी काठ को एक बार जब अग्नि का स्पर्श करा देता है तब उसे बुझने नहीं देता। लोक अग्नि जलाता है परन्तु जब अग्नि धधक उठती है तब वह पूर्ण स्वरूपिणी निरन्तर भस्म बनाती रहती है। उसे बुझने न देना, उसके जलने के साथ दिन रात जागना ही योगी का धर्म है। धर्म की स्थापना के लिए मत्स्येन्द्र को लाना होगा, अन्यथा माता सामन्तेई का दान व्यर्थ हो जायगा। गोदावरी पर जो भाग बदलकर आदिनाथ की शरण में आये हैं, वे सब फिर अन्धकार में लौट जायेंगे। एकान्त वन-गह्वर में योगी गोरख निर्विकल्प समाधि लगा सकता है। उसे मत्स्येन्द्र से व्यक्तिगत मोह नहीं। धर्म की तृष्णा उसमें बाकी है क्योंकि उसी से लोक का कल्याण मिलेगा। उसके लिए जो भी बाधा आयगी उसे पार करना होगा वत्स! उसके लिए लज्जा नहीं है। आज योगी गोरख वह करेगा जिसे सुनकर लोक आश्चर्य चकित रह जायगा। महालग! योगी गोरख ने स्त्री को तुच्छ और घृणित कहा है योगी के जीवन के लिए! किन्तु आज योगी स्त्री का दास हो गया है और अमृत को भूलकर कुल में सीमित हो गया है। स्त्री इतनी बड़ी शक्ति है? मैं नहीं जानता। परन्तु यदि वह इतनी प्रबल है तो परमशिव जान कि माया का रूप धारण करके ही मैं प्रासाद में घुसूंगा और ।

की भांति स्वरों के अधरों को छू लेने को लालायित हो जाते हैं। मांसल पगों से आहत प्रासाद की भूमि अलसाई वधू सी सकुचा जाती है। काका-तूआ मौन के चक्र पर बोलता है। स्त्रियां उसमें कौतूहल से उपहास करती हैं। वह बोलता रहता है तो प्रतिस्पर्धा से भीतर की वापी से निकलकर हंस फेंकार कर उठता है। फिर झनझनाता हास्य झंकारता-सा वीणा के तारों पर मचलने लगता है जिसमें मानो प्राणों का सम्मोहन बहने लगता है।

कलिंगा पूछती है, 'अरी नवली! तेरा नाम क्या है?'

नयी स्त्री कहती है— छदमा!

'उई मां! कैसा मनोहर!

कलिंग! कलिंग!'

'आई महादेवी!

'अच्छी तो है।

महादेवी का प्रमाद है।

स्वर्ण का सिंहासन है। चीन के रेशमी वस्त्र पड़े हैं उस पर। दासी मदिरा ढाल रही है। रत्नचषक में लोहितवर्णी मदिरा। फेन उफनते हैं। महादेवी जाकर राजा मत्स्येन्द्र के समीप बैठ जाती है। दीपों के प्रकाश में महादेवी के सुडौल स्तन पारदर्शी रेशम में से स्पष्ट दीख रहे हैं। स्वर्ण-कंकणों पर हीरक जड़े हैं। कंधों के पीछे बंग की मलमल लटकी है। कितनी महीन है वह। सूअर का मांस बहुत स्वादिष्ट है। मत्स्य भी अच्छा है। यह पक्षी भी अच्छा मसालेदार है। चने कैसे मसालेदार हैं!

मृदंग बजाने वाला पान चबाता, आंखों में काजर डाले है। पूछता है, कलिंगे। तेरी जय हो!'

'कम रे रसभीन!'

यह सुंदरी कौन है? इन्द्रधनुष निचोड़ लिया है जैसे!'

छदमा!'

अवगुण्ठन की आधी छिपी भंगिमा।

'एक चषक पिला दे सुंदरी! अपने हाथों से!'

'रहने दे, रसभीन! नवेली है।

'तुझे मेरी सौगन्ध !'

छद्मा और लजाती है।

'पिला दे, री ! रसभीना बड़ा मीठा है'।

छद्मा पिलाती है एक चषक ।

और गाता सुन्दरी मुझे आज इन्द्रासन मिल गया है ।

वह और ढालती है ।

रसभीना लुट जाता है विभोर-सा ।

नृत्य प्रारम्भ होता है।

नूपुर बजता है।

मास पिण्ड उठाकर मत्स्येन्द्र मुख में रखते हैं ।

और नूपुर का स्वर फैलता है ।

कलिंगा !

विमला हसती है। मत्स्येन्द्र विभोर हैं। विमला के नयनों में अपार गर्व है।

मृदंग क्या नहीं बजा अभी ? उसकी थाप के बिना कलिंगा का नृत्य ऐसे रुक जाता है जैसे समुद्र पर झूमता समीरण अवरुद्ध हो जाता हो !

मृदंग !!

कौन बजायगा ?

थाप पड़ी ।

कौन !

छद्मा !

जीती रहो !

कुशल हाथ हैं कुशल चरण हैं। मादक विस्फुरण में कुट्टिम पर बिजली-सी कौंधने लगती है और मृदंग मथनाद सा पीछे दौड़ता जा रहा है ।

कलिंगा की अंग भंगिमा में कामदेव स्वयं अपने धनुष बार बार तोड़ तोड़कर फेंक रहा है अपरूप छवियों के समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन करने को चंचल हो रहे हैं। गमकता नूपुर मदिर की सम्पूर्ण वासना का निनादी प्रहार बनकर स्वरों की सहस्र मोहिनी को विकीर्ण किये दे रहा है।

और बजा रहा है मृदग ?

राजा मत्स्येन्द्र पूछते हैं विमने ! मृदगवादिनी कौन है ?'

नयी नर्तकी है, स्वामी ! कलिगा की सखी।

न य का वेग बन्ना जा रहा है और मृदग की गूज भी उस वग का सम्भाने जा रही है जैसे पार्वत्य प्रान्त की उच्छायल नदी का तीर के पाषाण राके रोके घिस जा रहे हो। स्त ध है प्रासाद भूमि। केवल नाद केवल अनवरत रूप यौवन और मादकता। मदिरा की ग ध पर अब अनग झूम लाट रहा है। उज्जयिनी के कलाकार पर प्रकाश की किरणें भिनमिना रही हैं। नत्य के भुकरता अब साकार सौन्दय बन गया है आज कलिगा नहीं नाच रही मृदग का स्वर नचा रहा है। यौवन की गरिमा ही यौवन की सुकुमारता म खेलने लगी है।

फिर बन्ना की कवन और फिर भनभनाहट और फिर उन्मुद्ध मृदग घाप—बन्ना-बन्ना वगवान वेगवान जैसे समुद्र मन्थन का घाप जिस पर अमृतघट सी आनोदिनी बनकर नाच रही है कलिगा !

साधु साधु ! ! मत्स्येन्द्र कह उठते हैं।

नत्य म द्विगुणित स्फूर्ति आती है। आज मृदग नचा रहा है कलिगा का !

और ध्वनि आती है स्पष्ट !

यह क्या है ?

चौंकते हैं मत्स्येन्द्र !

विह्वल !

व्याकुल !

नींद म से अचानक जाग उठे म लग उठते हैं

यह कौन है ?

जाग मछिन्द्र

गोरख आया

जाग मछिन्द्र

गोरख आया !

'रोक दो यह नत्य !' पुकार उठते हैं मत्स्येन्द्र।

नत्य थम जाता है। जस माया थम गयी। जस गन्धाए न परमशिव की भाँति उस मशीनवाद की शक्ति का पयनाहुत कर लिया।

मृन्ग-नाम्नी !

देव !

यह तून क्या बजाया था !

देव ! नृत्य था ! सष्टि का मय ! और दावित व नृत्य म चनन बोलने लगा था। निद्रा छन गयी। क्षमा करें देव !

कौन ?

गोरख !!

योगी छन्मा बना !! विमनिए ! विमनिए यन तण्णा !

गुरुदेव ! आतस्वर म पुकार उठता ह गोरख और गिर जाता है मत्स्येन्द्र व चरणा पर — मैं आ गया हूँ गुरुदेव ! गोरख आ गया है।

कृत्रिम स्तन गिर पड हैं। कितना सुन्दर पुरुष है ! कलिमा की रोप नहीं। जा भरमार दख रही है। विमला की आँखें फट गयी हैं आश्चय, भय घणा और प्रतिहिंसा स ! और दख रहे हैं मत्स्येन्द्र।

गोरख वत्स !

गुरुदेव ! अकुल बुला रहा है। उसीने मुझे भजा है गुरुदेव !! आपने जो धूनी जलाई है वह स्वयं आप ही बुझा रहे हैं।

गोरख ! मत्स्येन्द्र कहत हैं किसे बुझा रहा हूँ मैं गोरख ! कुल और अकुल का क्या मैंने सामरस्य नहीं किया ? तू अविद्या क कारण स्त्री का अलग करके क्या देख रहा है ? जब सब कुछ वही है तो फिर उसमे भेद क्या ?

गोरख न आभूषण उतारकर फेंक दिए हैं। वस्त्र भी। केवल एक कच्छ पहन ह। मुंडी हुई देह। एक एक पसली दीख रही है।

गुरुदेव ! जीव क पाँच बन्धन ह—अनात्मा म आत्मबुद्धि आत्मा म अनात्म बुद्धि जीवा म परस्पर भेद ज्ञान ईश्वर और आत्मा म भेद बुद्धि और चतन्य को अपने स अलग समझने की बुद्धि। तभी वह जन्म मरण के चक्र म घूम रहा है। यह जो साधनाएं हैं यह सब बाहर नहीं भीतर ही हैं। आप ही ने कहा था, गुरुदेव ! आपने शास्त्र परम्परा का निचोडकर

मनुष्य की मुक्ति का मार्ग देखा था। आपके गुरु ?आदि जालन्धरनाथ इन अनात्मवादियों के जिस जाल में फँस, आप भी घूमकर उसी में आ गये ! अब यह मानस सत्य बाह्य सत्य क्या हो गया ? साधना की ऊँची सीढ़ी से आप नीचे कैसे उतर आये ? गुरुदेव ! आपने कुछ भी किया किन्तु यदि आपने कुण्डलिनी को पूर्णत सिद्ध किया होता तो क्या आत्म विकास के लिए इतने नीचे गिरना पड़ता ? जो भीतर है, उसे बाहर क्या खोजे योगी ? योगी गृहस्थ बने ? भूल जाए आत्मतत्व को ? माता को वामा बना ले और साथ ही उसे अपनी माता भी कहे ? यह तो साधारण व्यक्ति का काम है, गुरुदेव !'

मत्स्येन्द्र शिथिल हो जाते हैं।

रानी विमला चिल्लाती है दण्डधर ! इस धूर्त को पकड़कर इसका सिर काट लो !

'काट लो मा। गोरख कहता है किन्तु उससे क्या गुरु मत्स्येन्द्र का पतन छिप जायगा ? आदिनाथ का बताया उपदेश तो सिद्ध होकर रहेगा। योग मार्ग ही कल्याण का मार्ग है।

'स्त्री विहीन मार्ग !'

'मा ! स्त्री योगी के लिए नहीं। यह व्यभिचार को न्याय बनाना है। कायायोग में यह दुष्कर्म लोक में पाप को प्रश्रय देते हैं।

मत्स्येन्द्र व्याकुल से देखते हैं और कहते हैं 'क्या कहता है गोरख ! स्त्री शक्ति है।'

गोरख कहता है स्त्री के संग सोना यम का भोग करना है। उसके साथ तो पानी भी नहीं पीना चाहिए। हे मत्स्येन्द्र ! इसी प्रकार अमरता प्राप्त हो सकती है।'

'अमरता ! रानी कहती है 'मूर्ख तू नहीं मरेगा !'

मरूँगा माँ ! पर मेरी आत्मा नहीं, देह मरेगी।'

'देह का धर्म क्या है ?

'योगी के लिए संयम !

'गोरख ! मत्स्येन्द्र का स्वर भग जाता है।

गोरख कहता है हे गुरु ! लोभ और माया को छोड़ दो। आत्मा का

परिचय रखा जिससे यह सुन्दर काया नष्ट न हो जाय। विद्यानगर से आये कण्हपा ने मुझे आपके बारे में बताया था। यह सब जो हुआ है आपके भोलेपन के कारण ही। आपने अमृत रस को बाघनी की गोद में खो दिया। घुंघरू बजन के स्वर में ताल मिलाकर नाचते हुए आपने माया के जाल में अपनी सारी आध्यात्मिक कमाई खो दी है।

रस तो बह गया तत्त्व चला गया और रस गया तो क्या तत्त्व फिर भी बचा है। बाहरी बातें छोड़िए। सारतत्त्व ग्रहण करिए। यही योग-मत है।

रानी के पुत्र आ गये हैं।

गोरख देखता है।

मत्स्येन्द्र उन्हें देखकर अपार वेदना से भर उठे हैं।

इन्हें भी त्याग देंगे स्वामी ? रानी पूछती है।

मत्स्येन्द्र हाथों में मुँह छिपा लेते हैं।

योगी गोरख कहता है—'उदास योग लेकर राजा जनक ने मिथिला में सब-कुछ के बीच में रहकर भी, सब कुछ को अलग रखा था। क्या आप इतना भी न कर सकेंगे ? क्या लोक में यह ब्राह्मण दम्भ बना रहेगा ? क्या जातियों की घृणा बनी रहेगी ? क्या यह व्यभिचार बना रहेगा ? क्या यह कुत्सित उपासनाएं बनी रहेंगी ? क्या यह नास्तिक छद्म जीवित रहेंगे ? क्या योग के नाम पर अविश्वास बन ही रहेगा ? मैं पूछता हूँ उत्तर दें गुरुदेव !

रानी कहती है यह अपना कर्मयोग है बालक ! इसे तू रोक लेगा।

गोरख कहता है हे मानस ! अपना व्यापार बाँध लो। प्राण-पुरुष उत्पन्न हो गया है। जागा हुआ योगी अध्यात्म में लग गया है। इसे शरीर-रूपी नगर में प्रवेश करना है। २१६०० बार यह श्वास जप करती है—अजपा जाप निरन्तर चल रहा है। तीन नाड़ियों में पवन बह रहा है। षट कमलों में ब्रह्मचारी बसता है। हंस पवन फूल पर बैठा है। नौ सौ नदियों की तरह यह नाड़ियाँ पानी भरती हैं। यह नीचे बहती धारा फिर ऊपर चढ़ाइए ! सूर्य चन्द्र का लोप होने ही बाह्य संसार अन्धकार में खो जाएगा। नये प्राकार और सिंह द्वार खुलकर प्रगट होंगे।

मत्स्येन्द्र स्वते ह जस कुछ सोज रहे हैं।

गोरख कहता है, 'यदि योगी ही अपने सुखविलास म भूलकर लोक की रक्षा नहीं करेगा तो क्या होगा, गुरुदेव! बाहर निकलिए। शासन करने को तो बहुत हैं। ज्ञान कौन फैलायेगा? धर्म की रक्षा कौन करेगा? इन विभिन्न धर्मों की लड़ाई म मनुष्य को एक वह भूमि कौन दिखाएगा जिस पर आकर परस्पर घृणा, कलुष, पाप सब मिट जाते ह?

रानी चौंकती है। मत्स्येन्द्र खड़े हो गये हैं फिर।

गोरख कहता है—

मेरा वैरागी जागी मन तो रात दिन भोग म लगा रहता है। कभी भी जोगिन नहीं छोड़ता। मानसरोवर म मनसा भूतनी आती है और गगन मण्डल म सती बना लेती है। मेरे सास-ससुर मरी नाभि म बसते हैं। मैं ब्रह्मस्थान का निवासी हूँ। मेरी जागन कुण्डलिनी है। इडा पिंगला न उसमें मुझे सुषुम्ना म मिलाया। नाभि की सुन्दरी ही नानि है, गुरुदेव! वही तो सृष्टि को रचती है। उस जगाइए, गुरुदेव!'

रानी विह्वल सी रो उठती है। प्रासाद म हलचल मच रही है परन्तु सब टँगे हुए-से स्तब्ध खड़े हैं। वह कहती है स्वामी! इसे निकाल दीजिए!

किन्तु मत्स्येन्द्र बोल नहीं पाते।

रानी अपनी अँगूठी का ढक्कन खोलती है। विशाल चपटा हीरा सरक जाता है। उसका विष खाने को उठाती है वह हाथ। गोरख हाथ हिलाकर विष गिराकर कहता है, आद्या! फिर सती न बनो, अन्यथा शिव को फिर शवभार ढोना पड़ेगा और फिर ब्रह्माण्ड म इनका दाह धधक उठेगा।'

रानी असमर्थ सी मत्स्येन्द्र के चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगती है। मत्स्येन्द्र का सिर फिर उठ गया है गम्भीर हैं नयन।

गोरख कहता है ज्ञान बिना बीज जमा ह निराधार है। न मूल है न पत्ते। वह तो बन्ध्या का बालक है। न वह शून्य है न स्थूल अचिह्न है पूजाहीन। ध्वनि के बिना बजता है अनाहत नाद। वेदों के पंडित उसे नहीं समझते। उसी का साक्षात्कार करना होगा।

मत्स्येन्द्र को याद आ रहा है।

गुरुदेव ! सिद्धि प्राप्त करके आपने कहा था—चलो गोरख ! जाग को जगाओ। किसे जगाया है आपने ? यहाँ तो गृहस्थी है। अपने घर के बाहर सर्वोत्तम की यह धुन भी यहाँ क्या चिन्ता हो रही है ?

कलिंगा स्तब्ध है। रानी का स्वप्न सुनाती रहती है।

गोरख कहता है—

३६० हड्डियों की धमनियों का क्या है यह शरीर।

२१६०० साँसें स्नान जाग हैं। इसमें ७२ नाड़ियाँ हैं ८६ मुद्राएँ हैं और ५२ वीर चेतन इस तीन वाला दर्जी है। यही निरंजन सिद्धि की भूमिका है। सब मरते हैं। मृत्यु के लिए क्या जीवन को प्याले की तरह पीना होगा कुत्ते की तरह चाट चाटकर ? नाद आकाश में तीव्र पवन के शिखर पर जलाते हैं योगी धूनी ! वहाँ से उठकर उनका शृंगी निनाद अनाहत गूँजता है। मनुष्य के तप और उत्थान का स्वर स्वर सोर में प्रेरणा होती है उनकी। गुरुदेव ! योगी का स्वरूप भूले हुए मनुष्य में जागरण आता है। अपने स्वार्थों में भूले हुए जीव को पता चलता है कि मनुष्य कहाँ तक किस ऊँचाई तक उठ सकता है हो सकता है वह स्वयं परमशिव ! वह शिव जहाँ पाप नहीं। पुण्य का अहंकार नहीं। क्या वह सब छोड़ देंगे गुरुदेव ? क्या लोक का मंगल न करके आप इस परिवार में ही सब भूले रह जायेंगे ? इसी के लिए सब किया था ? यही था क्या जीवन का उद्देश्य ? योनि मार्ग में ही बंधे रह जायेंगे ? म्लेच्छ यवन और ब्राह्मण बौद्ध और जैन और इन सम्प्रदायवादियों का अन्त कहाँ होगा ? धर्म के नाम पर यह लोग लोक में अन्धकार भरते रहेंगे ? और आप उन्हें सहायता देंगे ? इस सबको दूर करने का ही तो स्वप्न था न गुरुदेव !

मत्स्येन्द्र के नेत्रों में चमक सी आ रही है। लगता है बहुत कुछ याद आ रहा है।

गोरख कहता है—

भग राक्षसनी है राक्षसनी। उसने बिना दाँतों के सारे जगत को चबा डाला है। ज्ञानी ही उससे बच पाता है। लोक उसमें खो रहा है। तभी बाघिन माया उसे दबोचे है। फाड़ फाड़कर खाती है उसे। वह यमराज की बगल में खड़ी दहाड़ती है। वह रूपसी और कुरूपा दोनों में रहती है।

गुरुदेव ! बड़ी भोली लगती हैं, यही है माता, यही है वह शक्ति ! उस आप विषय का केन्द्र बनाकर योगी का सवस्व भूले हुए हैं । गुरुदेव ! सच्चे गुरु की खोज करिये !'

'सच्चा गुरु ! मत्स्येन्द्र के होठों से फूटता है ।

रानी शायद रो रोकर मूर्छित हो गयी है । सखियाँ दासियाँ उसे सभाल रही है और गोरख कहता जा रहा है—

'वह स्वप्न था जहाँ आदर्श साधक का रूप लोक में स्थापित होगा ! इसीलिए तो आपने साक्षात महादेव का रूप धारण किया था । जीवित ही भस्म लपेट ली थी कि मैं जीवन का अन्त जानता हूँ । यह ममता, अहंकार, स्वार्थ सब अन्त में भस्म बन जायेंगे—अन्त यह मेरा सत्य नही है । मैं अपने को छोटा नही, बडा बनाऊँगा ।

रानी फिर चेतन्य होकर बैठती है ।

गोरख कह रहा है—

'चलिए गुरुदेव ! मोहगुफा में से सिंह विक्रम से निकलकर भवाणय में दहाड उठिये । सिद्ध वन्दना का व्यंग्य लोक पर छाये जा रहा है । कुण्डलिनी को फिर सहस्रार तक पहुँचाकर आत्मशक्ति और शुद्धि प्राप्त कीजिए । और फिर चलिये । घर घर अलख जगाकर कहना होगा कि स्त्री माया है । वह केवल जननी है । सम्भोग केवल सिसृक्षा है । सृष्टि करने के लिए ही सम्भोग है । उसका आनन्द समझना भूल है । आनन्द पिण्ड में है । इस पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड समाया है गुरुदेव ! क्या इस पिण्ड की महत्ता इसकी विराट शक्ति को आप नहीं जगायेंगे ? दूध पिलाकर पालने वाली माता से आप पशुत्व से आचरण करेंगे ? सम्भोग को साधना बनाकर आप धूर्तों और नीचों का यह पाप फैलाते रहेंगे ?'

'गोरख !' रानी विह्वल-सी उठकर कहती है—'क्या क्या गोरख ! तो यह धर्म नहीं ?

'धर्म माता ! धर्म-लोक रक्षक है । आत्मसिद्धि का, अन्तर्लोक का परिष्कार है अन्यथा मुझे गुरु को जगाने आने की क्या आवश्यकता थी ? गुरु लोक का मूल सत्य, इसीलिए आया हूँ, माता । माता हो तुम्हारे जीवन का अन्त नहीं माता । तुम शक्ति हो । तुम

परन्तु इस पुरुष को यानि दास बनाना ही क्या तुम्हारा मातृत्व है ? क्या पुरुष और ऊपर नहा उठ सकता ? योगी क्या ऐसा आचरण करे ?

रानी कहती है, स्वामी ! जिस धम समझती थी वह स्वाथ बन गया ! जिस आनन्द कहत थ वह मोह बन गया। सचमुच ! योगी का गन्तव्य यदि आत्म परिष्कार मात्र है तो गोरख क्या आया है ? क्या आया है अपना सहजानन्द छोड़कर ? गोरख ! फिर परिवार की ममता कहाँ रहगी ? लोक किस सम्बल स चलगा ? यदि स्त्री गभ धारण न करगी तो लोक चलगा कस ?

सब एक स नहा होंगे माता ! सब ही इस उच्च ज्ञान के अधिकारी तो नहा हो जायेंगे। जो जागेंग कि उठें उन्ह ही उठना होगा सबको उठान क लिए एक आदश उनक सामन रखने क लिए। इसीलिए आया हूँ माता ! इसीलिए गुरुत्व को जगाने आया हूं। मुझ यदि अहंकार यहाँ लाया है तो गुरु के चरणों की शपथ गुरु निन्दा करके मैं निष्पक्ष एकत्र करके स्वय पथ चला सकता था लोक को चमत्कार और सिद्धियां स ठगकर पुज सकता था। इसम मरा सम्मान बढ जाता लोक ऐस ही जयजयकार करता जस कण्हपा का करता है। किन्तु वह तो मरा लक्ष्य नहीं। योगी को यश क्या चाहिए ? उस तो किसी प्रकार की भी आत्मतृष्णा क्या हो ? मर गुरु तो मत्स्येन्द्र हैं जिन्होंने अनगवज्र को गोरख बनाया था। उन्होंने ही मुझे माग दिखाया था। फिर किस कारण स वे अपने ही माग स भटक गय हैं ? तुम्हारे ही कारण न माता ?

मरे कारण ! रानी कहती है— गोरख तुम भूलते हो। स्त्री फसाती नहा। पुरुष स्वय फसता है। परन्तु तुम जिसे फसना कहत हो योगी स्त्री के लिए वही सहज जीवन है परन्तु यदि तुम इस निचला स्तर कहत हो और ममता स भी ऊपर उठना चाहत हो तो ले जाओ अपने गुरु को जो इस समय आत्म विश्राम पाकर खड़े हैं। रानी विमला एस पुरुष क साथ नहा रह सकती जो उसक सान्निध्य को पाप समझ। रानी विमला ऐसा बन्धन बनकर नहीं रहना चाहती जिसम पुरुष पशु बनकर उसस बँधा रह मन म उसस डरता रह परन्तु आबद्ध सा पीडित सा कुत्ते सा जीभ लटकाय भटकता सा, पीछे पीछे डोले। रानी विमला सिंहनी है, गोरख !

वह वृत्त का। अपना स्वामी नहा बना सकती। देती हू तुम्हे यह दान। ले जाओ! जिसे तुम सत्य समझते हो यदि वही सत्य है तो ले जाओ अपने गुरु को। यदि तुम्हारे कल्याण मार्ग मे स्त्री केवल सम्भोग मे बच्चा पैदा करने का यन्त्र है, और उसका सारा सौन्दर्य तुम्हे गिराने वाला है, तो धिक्कार है इस सौन्दर्य का! यह सौन्दर्य है ही कहाँ? कौन जाने वासना की जघन्यता मे ही पुरुष को यह मासपिण्ड सौन्दर्य लगता है! गुरु को ले जाओ, और ले जाओ इन दोनो पुत्रो को। यह क्या है? इस पुरुष की ही देन हैं न? मैं तो इन्हे और कहा से नही लाई। स्त्री-देश मे स्त्री ही का शासन है गोरख! क्योंकि यहाँ स्त्री ने कभी पुरुष के उस दम्भ को स्वीकार नहीं किया जिसमे वह स्त्री को पाप समझे और स्त्री फिर भी उसके पीछे घूमते रहो। स्त्री तो गगा है जो हिमालय से गिरती है लोक का सिंचन करने को। और हिमालय क्या है? स्थाणु! पुरुष!! इन दोनो पुत्रो को भी देती हूँ पति को भी देती हू मैं इनके बिना भी पूर्ण हूँ।'

माता!' गोरख पुकार उठता है 'आद्या! माता सामन्ई! माता विमला! शक्ति! आद्या तुम ही सृष्टि करती हो। सचमुच, शिव तुम्हारे बिना शव है। तुम धन्य हो। तुमने लोक के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया! गुरुदेव! चलिए चेतन के जागते ही पैदा अपने आप उठ गया!'

मत्स्येन्द्र देखते है। और कहते हैं कहा चलू वत्स! कहा जा सकूगा मैं? लोक हँसेगा! गुरु ही पथ भ्रष्ट हो गया।

रानी कहती है परन्तु उस दम्भ का निबाह भी तो नही होगा! एक अह के लिए क्या आप अब मुझे कृत्रिम स्नेह दिखाकर बहकाते रहेगे!

वज्र हृदय हो गयी हो तुम देवी!' मत्स्येन्द्र कहते हैं, तुम भी मुझे पतित समझती हो? किन्तु मत्स्येन्द्र इस पाप का प्रायश्चित करेगा। गोरख! मुझे मार्ग दिखा! आज से तू मेरा गुरु है। आदिनाथ के मन की वही निरवलम्ब जलती धूमहीन प्रज्वलित अग्निशिखा से ददीप्यमान मार्ग पर दिखा मुझे गोरख मेरी नीद टूट गयी है।

मत्स्येन्द्र आगे बढते हैं व गोरख के चरणो को पकडते हैं।

गोरख पीछे हटता है।

परिशिष्ट

१

इसके बाद गुरु मच्छिन्द्र लौट आये और गोरख ने कौल धर्म में ब्रह्मचर्य की स्थापना की। गुरु मत्स्येन्द्र ने कौलज्ञान निर्णय के बाद 'अकुलवीर तंत्र' लिखा, जिसमें हम गोरखनाथी साधना के स्वर मिलते हैं। यद्यपि गोरखनाथ को ही आदिनाथ के मार्ग का सच्चा प्रवर्तक मानना चाहिए, परन्तु इतिहास में यह एक आदर्श है कि उस शिष्य ने गुरु को फिर जाग्रत करके यह प्रमाणित किया कि उसका ध्येय स्वयं गुरुत्व प्राप्त करना नहीं था। उसका उद्देश्य था उस सत्य को प्रतिपादित करना जिसे वह सर्वश्रेष्ठ समझता था। गोरख के इस व्यक्ति पक्ष को देखे बिना उसके योग पक्ष का सामाजिक पक्ष समझ में नहीं आ सकता। उन दिनों गुरु भक्ति का बहुत महत्त्व माना जाता था।

सिद्धों में भी इसका महत्त्व था। गोरख से पहले कुमारिल भट्ट जो शंकराचार्य के समय में थे उनकी कथा इस गुरु भक्ति पर विशेष प्रकाश डालती है। ब्राह्मण धर्म का फिर से स्थापित करना चाहते थे। बौद्धों को इसके लिए हराने की बड़ी आवश्यकता थी। सोचकर वे बौद्ध हो गये और उन्होंने बौद्ध गुरु से सारा बौद्धज्ञान प्राप्त किया। तब तक ऐसे छिपे रहे कि अपने को तनिक भी प्रगट नहीं होने दिया। उनका विचार यह था कि बौद्ध तो ब्राह्मणों के वेद उपनिषद जान लेते हैं और खण्डन कर देते हैं, परन्तु ब्राह्मण बौद्धों से घृणा करने के कारण उनके ग्रन्थों को नहीं पढ़ पाते। जब उन्होंने सब पढ़ लिया तो लगे बौद्धों का खण्डन करने। इसमें उन्हें अपने गुरु से भी शास्त्रार्थ करना पड़ा। शास्त्रार्थ में गुरु हारे और कुमारिल जीत गये। किन्तु अपना कार्य कर चुकने पर कुमारिल को इसका बड़ा दुख था कि उन्हीं के द्वारा परास्त किये जाने से गुरु धर्मपाल का सम्मान घट गया था। वेद की रक्षा तो कुमारिल कर चुके थे परन्तु व्यक्तिगत रूप से तो उन्होंने गुरु की निन्दा की ही थी। इस पाप का तो उन्हें

प्रायश्चित्त करना ही था। इसीलिए वे जीवित ही तुषानल में जल मरे और उन्होंने दोनों पक्षों में अपनी दृढ़ता का निर्वाह कर दिखाया।

गुरु भक्ति की यह परम्परा कबीर में भी थी और सूफियों में भी थी। मध्यकाल के संत सम्प्रदायों में प्रायः ही गुरु भक्ति का मुख्य महत्त्व था। दक्षिण के आचार्यों ने जो सम्प्रदाय स्थापित किये थे उनमें भी गुरु महत्त्व था। वस्तुतः गुरु भक्ति का इतिहास में बड़ा बुरा परिणाम होता है। महापुरुष के बाद उसके व्यक्तित्व को समाज पक्ष से अलग कर दिया जाता है। हर गुरु एक विशेष समाज में होता है अतः बहुत सी बातें वह अपने युग की ही कहता है। परन्तु शिष्यवर्ग गुरु की हर बात को मक्षिकास्थान-मक्षिका के रूप में ग्रहण करते हैं और इस प्रकार वह बात जो गुरु अच्छाई के रूप में कहता है शिष्यों के हाथ में पड़कर वह रूढ़ हो जाती है। उदाहरण के लिए मुहम्मद पैगम्बर के समय युद्ध में हार जाने से एक कबीले में विधवाएँ अधिक हो गयीं। अनाचार बढ़ने लगा। दूसरे कबीलों में उन दिनों एक और बात यह भी थी कि एक एक अरब कई कई औरतें रखता था। इन दोनों अनाचारों को देखकर पैगम्बर ने नियम बनाया कि एक पुरुष चार स्त्रियों तक को पत्नी बना ले। इस प्रकार पैगम्बर ने दोनों प्रकार के अनाचार रोके और उस युग के हिसाब से उस समय वह ठीक बैठ गया। स्त्रियों को पति मिल गये और इधर पुरुषों पर भी रोक लग गयी। पर चूंकि पैगम्बर ने कहा था वह बात पत्थर की लकीर बन गयी और अब भी वैसी ही मानी जाती है।

गुरु पूजा का यह सामाजिक पक्ष असल में तो न जाने कितना पुराना है पर बहुत अधिक बढ़ा यह गौतम बुद्ध के बाद। हालांकि गौतम बुद्ध ने कहा था कि उपदेश को पानी की नौका समझो उस नाव को धरती पर पहुंचकर लादे लादे मत फिरो। पर हुआ उल्टा ही। बुद्ध में भी एक कमज़ोरी था। उन्होंने अपने को बुद्ध कहा और अपने मार्ग को सद्धर्म। यानी अकेले अक्लमन्द उनके हिसाब से वही थे और बाकी मार्ग सब अच्छे धर्म नहीं थे। यह असहिष्णुता और अहंकार की ही अभिव्यक्ति थी। जब बुद्ध नहीं रहे तब चेलों ने पहले तो उनके सामान को सम्मान के साथ जुटाया, जैसे अब गांधीजी की चप्पल की फोटो छपती है। मगर वह चीजें

अजायबघर म रखी जायें ता शायद इसका अलग महत्त्व हो। पर बुद्ध के बाद अशोक के समय म पेड और चरण चिह्नो के रूप म बुद्ध की पूजा शुरू हो गयी। फिर भारत म विदेशी जातियाँ आयी। उनका सम्पर्क बढा। कुछ वैष्णवो का भी जनता पर प्रभाव बढ रहा था। वैष्णवो म मूर्ति-पूजा थी। बौद्ध भी मूर्ति बनाने लगे और बुद्ध भगवान बन गये। कुछ समय बाद बौद्धो म दो दल हो गये। एक का मत था कि बुद्ध पृथ्वी के वासी मनुष्य थे, दूसरे दल ने कहा कि वे स्वर्ग म हुए थे पृथ्वी पर आये ही नहीं थे। या गौतमबुद्ध बोधिसत्व बने। वैष्णवो के अवतारवाद स जनता को बडा सन्तोष हुआ कि विष्णु बार-बार लोक रक्षा करते हैं तो बोधिसत्व भी बार-बार जन्म लेने लगे। फिर ध्यानीबुद्ध बने और फिर उनके ब्याह हुए और आगे की बात तो हमने स्पष्ट कर ही दी है। बौद्धमत का भारत मे इस प्रकार अन्त हुआ कि—

(१) बौद्ध धर्म अपने असली रूप स कही अधिक बदल चुका था।

(२) शकर का ब्रह्मवाद ऐसा था जिसने बौद्धो को दार्शनिक पक्ष मे खोखला कर दिया।

(३) गोरखनाथ ने उनके तान्त्रिक और योग-पक्ष को अपने ब्रह्मचर्य के द्वारा खोखला कर डाला।

अब बौद्ध मठ रह गये व्यभिचार, जादू टोने और जडता के गढ्ढ। लोकमत तो हट्ता जा रहा था, पर वे जीवित थे क्योंकि राजाओं का धन प्राप्त था। बौद्ध धर्म सदैव राजाओं के बल पर जिया। स्वय बुद्ध के समय म उसमे बुद्ध की जाति के क्षत्रिय ही अधिकतर दीक्षित हुए थे, क्योंकि वे ब्राह्मण धर्म के विरोधी थे। ब्राह्मणो ने अनार्य देवी-देवताओं को स्वीकार करके, अनार्य उपासनाएँ अपनाकर, वैदिक धर्म को पीछे हटाकर असल में गृहस्थ धर्म का पल्ला पकडा। इसीलिए वह राज्याश्रय का इच्छुक नहीं था। यह भी एक महत्त्व की बात है कि प्राय ही ब्राह्मण-वाद के विरोधी सम्प्रदाय सब गृहस्थ धर्म की ब्राह्मण की तुलना म बहुत अधिक निन्दा करने वाले रहे हैं। तो बौद्धमत जब राज्याश्रय पर रह गया तभी उस पर एक गहरी चोट दी तुर्कों ने। तुर्क बर्बर कबीलो के लोग थे। वे हो गये मुसलमान, तो उन्हे लगने लगा कि सारा सत्य हाथ आ

गया । उनके पीछे कोई मानवतावादी सहिष्णु परम्परा तो थी नहीं । अरब का धम और ईरान की सस्कृति—इन दोनो ने तुर्कों की कट्टरता और अहकार से भरा और जनसाधारण तुर्क म भी वही गव था जो सद्धम के प्रचारक म था । बौद्ध भी एक ससार बनाना चाहते थे इस्लाम सम्प्रदाय वालो का भी यही सपना था । तुर्कों ने उनके विहारो का अपार धन खूब लूटा और इस प्रकार बौद्ध धम को नष्ट किया । उस समय जो बौद्ध योगमार्गी थे और वाममाग को छोड सके वे योगमार्गी होन के कारण या तो योगियो म जा मिले या गावो म और अन्ततोगत्वा हिन्दू हो गये और जो बहुत ही शूद्र थे ब्राह्मण को देख भी नहीं सकते थे कुछ घृणा के कारण, कुछ वण धर्म के विरोधी होने के कारण कुछ ब्राह्मणो के शासन म आर्थिक रूप म पिस हान के कारण उन्होंन मुहम्मद पगम्बर को भी बोधिसत्व का ही एक अवतार माना और मुसलमान हो गये । मुसलमान लोग भारत मे बौद्ध और अवदिक शैव जातियो के रहने के स्थानो म अधिक मिलते हैं—सिंध पजाब कश्मीर और सीमाप्रान्त तथा बगाल म । इस्लाम म बिरादराना ताल्लुक थे जाति प्रथा नहीं थी । काफी खान-पान की स्वतन्त्रता थी । बौद्धो के बोधिसत्व वज्रयान के बाद पढे लिखे लोगो म ही अनीश्वर-वादी थे जनसाधारण तो बुद्ध बोधिसत्व और ध्यानी बुद्धो को भगवान ही मानती थी । हा मानती थी शून्य परन्तु अभावात्मक नहीं । अल्लाह भी ऐसा ही था । उस स्वीकार करने म कष्ट नहीं था । इस्लाम म एक ही बात थी कि सोचने की आजादी नहीं थी पर सोचने की बौद्धमता वलम्बियो को ऐसी तकलीफ भी न थी । तकलीफ थी ब्राह्मणवाद म जो दूर हो गयी ।

बौद्धो के अतिम दिनो म गोरखनाथ ने क्या किया यही हमने यहाँ स्पष्ट किया है । दुर्भाग्य म गोरखनाथ के बाद उनके नाम पर भी एक अलग पथ चला हालाकि परम्परा कहती है कि गोरख ने छ अपने छ शिव के पथ चलाये । इसमे तो यही लगता है कि गोरख ने अपना कोई पथ नहीं चलाया केवल पथो का सुधार किया, आग्निनाथ के माग म उन्हें लगाया और उस व्यक्ति ने इसका श्रेय भी मत्स्येन्द्र को ही देना चाहा । परन्तु निस्सदेह वह शिष्य अपने गुरु स कहीं बडा बना था ।

असली प्रवत्तक वही माना गया। जब प्राचीन नाथ मत गोरक्ष-पन्थ बना तो शिष्यों ने गुरुवाणी को ज्यों की त्यों रखने की चेष्टा की। गोरख के वाक्य या पद जो विशेष परिस्थितियों में कहे गये थे, उन्हें उनकी परिस्थितियों से हटा दिया गया। अब गोरखनाथ का समाज पक्ष तो हट गया, प्रबल हुआ पथ-सरक्षण। उसमें यह भाग व्यक्तिपरक हो गया। यद्यपि योगिसम्प्रदाय और विशेषकर गोरखनाथ का सम्प्रदाय बहुत दिनों तक प्रजा लिए लडता रहा परन्तु उसका वह सन्देश खो गया जो गोरख ने दिया था। गोरख के बाद बहुत से ऐसे सम्प्रदाय भी आ घुसे पथ में, जिन्होंने वाममार्ग को भी बनाये रखने का तरीका निकाल लिया। अब योगी खाने-कमाने वाले हो गये और गोरख ने जो सिद्धि दिखाने को निम्न कोटि का कार्य माना था वह इन जोगियों का हथकण्डा बन गयी। धीरे धीरे इनका प्रभाव हटता चला गया और कबीर ने इन्हें उखाड डाला। गोरख ने अनेक अन्धविश्वासों से युद्ध किया था। परन्तु बाद के जोगियों ने उन्हें प्रश्रय दिया।

गोरख के नाम से जो कविताएँ मिलती हैं दुर्भाग्य से वे गोरख के युग की भाषा में नहीं हैं। चेलों के मुँह में वह अपनी भाषा बदलती चली गयी हैं। कुछ संस्कृत ग्रन्थ उनके द्वारा रचित अवश्य मिलते हैं। उनमें तो दर्शन और योग की बातें ही अधिक हैं क्योंकि संस्कृत में लिखे ग्रन्थ पढ़े-लिखों के लिए थे। गोरख की रचनाओं की भाषा अब सधुक्कडी हिन्दी है जबकि उसे मिलना चाहिए था अपभ्रंश के रूप में।

२

प्रस्तुत उपन्यास में गोरख का जो सामाजिक पक्ष दिखाया गया है उसमें भ्रम न हो इसलिए यहाँ बता दूँ कि गोरख पन्थ के नाम से बारह पथ चलते हैं। अब भी गोरख पथ में शिव प्रवर्तित अनेक पथ हैं जो गोरखनाथ को गुरु मानते हैं।

कण्ठर नामी रावल सम्प्रदाय, पागलपथी, पंख, वनिलानी हठनाथी,

कठोरता की भूमि के कारण मुसलमान विरोधी हो गये। वस इस्लाम के आगमन के समय इन योगमार्गियों का मुसलमानों पर गहरा प्रभाव पड़ा था, जो सूफी सम्प्रदाय में स्पष्ट है। ये सूफी कट्टर नहीं थे, सहिष्णु थे। यह सूफी असल में वेद बाह्य शैव या बौद्ध ही थे जो अरबों की तलवार के नीचे जबरन मुसलमान बना लिये गये थे। उनमें पुरानी परम्पराएं जारी थीं। योग मार्ग से प्रभावित इन मुसलमान सूफियों का रूप हमने अपने 'कुम्हार की भूल' नामक ग्रन्थ में लिया है।

३

पुराने शिवलिंग जो मिले हैं उनके साथ योनि का चिह्न नहीं होता था। अब जो मिलते हैं वे एक योनि की नक्काशी के दायरे में बनाये जाते हैं। गौर से देखने पर मिलता है कि उसमें लिंग के चारों तरफ एक सर्पिणी भी बनायी जाती है। वह कुण्डलिनी है। गोरखनाथ से पहले यह इस तरह नहीं बनती थी। गोरखनाथ चूंकि यह मानते थे कि शरीर के भीतर ही लिंग है और योनि भी भीतर ही है, और कुण्डलिनी ही शक्ति रूप में देह के भीतर ही रहती है, इनको देह के भीतर मिलाने में शिवत्व प्राप्त होता है, उसी का प्रतीक बनकर यह आकृति मंदिरों, मठों में प्रचलित हुई। बहुधा लोग यह मानते नहीं कि हमारे पूर्वज लिंग-पूजा का यह अर्थ लगाते थे। परन्तु उन्हें याद रखना चाहिए कि पूर्वज और तरह से सोचते थे। वे चूंकि लिंग और योनि के मिलन से सृष्टि होती देखते थे, वे इसे गन्दा नहीं मानते थे, वरन् इसे पूज्य मानते थे और उनके दर्शन में भी इसकी व्याख्या होती थी। आरम्भ इसका जिस तरह हुआ वह हम पहले बता चुके हैं। बाद में इसका अर्थ जब दार्शनिक पक्ष में आ गया तब इसका दूसरे ही पक्ष में लिया जाने लगा। गोरखनाथ के बाद तो इसे अध्यात्म और योग-पक्ष की ही बात के रूप में माना गया।

तन्त्रों में जो त्रिकोण बनते हैं वे भी लिंग और योनि के ही पुराने प्रतीक थे। बाद में उनके भी दार्शनिक अर्थ प्रचलित हो गये। इसी प्रकार

भारतीय संस्कृति अनेक प्रयोगों में से गुजरती हुई अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त कर सकी है। यह विचित्रता इसी रूप में है कि आपको बहुत-बहुत पुराने स्तरों की चीजें किसी-न-किसी रूप में विकास कर रूप बदलकर भी मिल ही जाती हैं यद्यपि काल ने बहुत कुछ नष्ट भी कर दिया है। सचमुच मनुष्य ने युग युग में कितनी तरह से अपनी युग-मीमांसा में सत्य को खोजने के लिए कितने कितने प्रयोग किये हैं। कामुकता और उच्छृंखल विलास को दार्शनिक पृष्ठभूमि देकर इतने व्यापक पैमाने पर भारत की तरह सम्भवतः किसी ने भी प्रयोग नहीं किया। और सारी परम्पराएं रूप बदलकर वैष्णव भक्ति में ऐसी अन्तर्मुक्त हो गयीं कि पता भी नहीं चलता।

४

मेरे मित्रों का विचार है कि योग बुद्धि का विकास नहीं करता। वह तो शरीर और मन का सन्तुलन मात्र है जिससे मनुष्य अपनी इच्छा से प्रकृति पर काबू करता है। उसमें केवल वैयक्तिक विकास ही है जो समाज के लिए लाभदायक नहीं है। अभी तक मनुष्य का विकास बुद्धि ने किया है और उसी से वैज्ञानिक प्रगति के द्वारा उसने प्रकृति पर इतनी विजय पायी है प्रकृति की इतनी जानकारी प्राप्त की है।

किन्तु यहां हम यह भूल क्यों करें कि योग जो अब है उसी को योग का सर्वोच्च स्तर मान लें? अपने जादू टोने तन्त्र, मन्त्र ईश्वरवाद अनीश्वरवाद, सम्भोग ब्रह्मचर्य आदि के बीच में, अपने प्राचीन आदिम और फिर मध्यकालीन विश्वासों में भी वर्तमान अवस्था तक आनेवाला 'योग' वास्तव में अभी बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में है। उसका वैज्ञानिक ढंग से कोई विश्लेषण यदि है तो प्रारम्भिक ग्रंथ पातंजल योग सूत्र है जो भी अब प्राचीन पड़ गया है। योग का तो वास्तविक विकास अब होगा। मनुष्य की वे शक्तियां जो अब तक के विद्वान और विज्ञान ने नहीं बतायीं योग अपनी बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में उन्हें दिखाकर लोगों को चमत्कृत कर चुका है। योग से रोगों का भी लोग इलाज करते हैं।

अपने प्रारम्भिक काल म गोरख का एक एमा ही प्रयोग था। यह कहना कि गारख का केन्द्र योग-पक्ष था समाज नहा—एकागी दृष्टिकोण है। गोरख जागरूक थ। याग पथ का विकास क्या साधारण मनुष्य के लिए कुछ लाभ नहा रखता था ? ममाज पथ म गारख न क्या किया ?

(१) गारख न विकृत साधनाग्रा, नर-बलि, जादू, टोन, निम्नकोटि के देवताग्रा देविया और एसी निकृष्ट साधनाओं को रोककर उनके नाम पर खाने-कमाने वाला का धधा रोका। प्रजा का भय दूर किया।

(२) गोरख ने वाममाग का रोककर स्त्री की मर्यादा बढायी और समाज म व्यभिचार को हटाया।

(३) गोरख न जाति प्रथा के विरुद्ध आवाज उठायी और मनुष्यमात्र को जाति विषय म समान माना हिंदू को ही यहा तक कि मुसलमान को भी। वह उपनिषद और शकर का परम्परा का एकेश्वरवाद था जिसने असख्य देवताओं का हटाकर ज्योति स्वरूप का ही श्रेष्ठतम मानकर, समाज को एकत्र की ओर बढाया।

(४) गोरख न सब धर्मों को छोटा मानकर योग माग की प्रतिष्ठा की और यागमाग म न जाति भेद था न वर्ण भेद। इस प्रकार उसन विकास का एक नया माग समाज के सामने रखा। इस योगमाग म विकास करके कोई भी ऊँचाई तक उठ सकता था। इसका समाज पर प्रभाव पडा।

(५) गोरख ने स्त्री की घोर निंदा की। एक तो कारण था यानि पूजा की अति के विरुद्ध प्रतिवाद। दूसरा कारण यह भी है कि गारख न वह निंदा मुख्यतया यागी का लक्ष्य करके की है गृहस्थ का नहा। निस्सन्देह गोरख यागी को गृहस्थ से ऊचा मानता था परन्तु गोरख न कनफटा औघड और गहस्थ—तीनो प्रकार के अधिकारियों को स्वीकार करके यह प्रमाणित किया है कि मनुष्य समान है परन्तु उनको सामर्थ्य के अनुसार भेद पड सकता है।

अधिकार भेद की स्वीकृति म यागी यद्यपि सवश्रेष्ठ माना गया परन्तु गारख न जो उपदेश सहज रूप स मवमाय रूप म दिये है उसम गहस्थ का भी विषया से बचने का कहा है। इसम गोरख का ही क्या दोष ? वैष्णव शैव, तुलसीदास, कबीरदास भी एक म हैं। इनके समय में

योनि पूजा की विभीषिका यदि जबदस्त होती ता शायद यह और भी जोर स स्त्री निन्दा करत।

(६) यह कहना कि गोरख का जनता पर डर का भाव था और कबीर स प्रेम था गलत है। गोरख का क्या कम विरोध हुआ था? गुरु को छुड़ान के लिए ता उस स्त्री रूप तक धारण करना पड़ा था। गारख न योगिरूप धारण करक जो सिध के पीर स युद्ध किया था वह कथा स्पष्ट करती है कि पीर प्रजा पर भार था, जबदस्ती भिक्षा दो या मरो कहता था। उसका बल तोडकर गारख न प्रजा का लाभ किया।

(७) गोरख न त्रिशूल उठाकर प्रजा की रक्षा की। कथा भी मिलती है कि गारख न नेपाल म मत्स्येन्द्री जाति का मुक्ति दिलायी थी। इसके अतिरिक्त गोरख का ही बीज था जिसन यागियो क हाथ म खडग दिया, जिसस उन्होन तुर्को स निरन्तर युद्ध करक प्रजा की रक्षा की। यह योगी ही घोडो पर चक्कर मला पर्वो और साम्कृतिक मिलनोत्सवो म जनता की तुर्कों के कट्टर हमलो स रक्षा करत थ।

(८) स्त्री पर गोरख का भयानक हमला उन पदा म ही मुख्य है जहाँ व गुरु को उपदश दत है। और गुरु यागी थ।

(९) गोरख न शकर की भाँति एकेश्वर तो माना परन्तु शकर के ब्रह्म की भाँति उनके परमशिव की वह निचली मंजिल सिसक्षा बनी, न कि ईश्वर (जडमाया+ब्रह्म) जिसक कारण वण धम को वह छूट नही मिली जा शकर के दशन म वण धम जीवित रखन को मिलती थी। यह भी गोरख न लाक कल्याण किया था।

अवश्य ही गोरख का उद्दश्य धम को ठीक करना था। धम को ठीक करके जनता को राह दिखाना था।